सूची पत्र.

पुस्तक को दृष्टिगोचर करत्ये पाठक जनको किसी सम्बन्ध तथा शब्द तथा अर्थकी शंका पड़े तो पहले अशुद्धि शुद्धि पत्र को देख लेवें.

जाहेर खबर.

(१) सनातन जैन धर्मावलम्बी सज्जनोंको विदित हो कि शहर अहमदाबाद (देश गुजरात)में जैन धर्मकी उन्नति के लिये " जैन हितेच्छु " ऑफीस आज सात वर्षसे खुली गइ है इसमें जैन धर्मके पुस्तकों रचनका रचानेका और अपने प्रेससे छपनेका कार्य होता है और पवित्र जैन धर्मका फैलाव के लिए प्रयत्न किया जाता है

(२) इस ऑफिस तर्फसे " जैन हितेच्छु " नामका मासिक पत्र प्रतिमास नया नया उपदेश जैन सूत्रोंका सार, संसार नीतिका उपदेश, जैन समाचार इत्यादि बाबतों से भरपूर छपा जाता है प्रतिमास ३६ पृष्ठका मासिक पत्रका वार्षिक मूल्य रु १) और पोष्ट खर्च रु. ०। है नयी सालकी भेट तरीके ' धर्मतत्व संग्रह ' नामका रु. १) कीमतका पुस्तक मुफ्त में देनेका ठहराव किया गया है

(३) इस ' जैन हितेच्छु " ऑफिसकी पास निराश्रित "जैन फंड " है, कि जिसका व्यय दुःखी जैनोंको गुप्त मदद देनेमें किया जाता है जिसकी मरजी होवे सो इस फंडमें यथाशक्ति रकम भेजे पहोंच दी जायगी

(४) यदि कोइ ग्राहकी इच्छा नये पुस्तक रचानेकी होवे तो ' जैन हितेच्छु " ऑफिसको लीख कोइ पुस्तक कीसी महात्मा का रचा हुआ किंवा किसी विद्वानका रचा हुओ होवे तो " जैन हितेच्छु " ऑफिसको भेजनेसे शुद्ध करके छापनेका काम किया जायगा

(५) जैन शालाओंके लिये किंवा अन्यथा बांटनेके लिए पुस्तकों चाहिए तो ' जैन हितेच्छु ऑफिसमें लिखनसे मीलेंगे. सब जातके पुस्तकों इस ऑफीसमें मीलते हैं

(६) " जैन हितेच्छु " ऑफिस द्वारा नीचे लीखे हुए पुस्तकों आजतक छप गये हैं:—

शास्त्रीमें

१ सम्यक्त्व सूर्योदय जैन रु. १)

२ ' सम्यक्त्व " अथवा ' धर्मका दरवाजा ' किमत रु. ०।८ (सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका स्वरूप, जैन और अन्य मतोंके दृष्टांत और न्यायसे अच्छी तरहसे समझाये गये है धर्मका और आत्मज्ञानका उपदेश अच्छा किया गया है)

३ आलोयणा (अति शुद्ध प्रत) ०–१–०

४ नित्य स्मरण (सामायिक स्तवनों, अणुपूर्वि साधुवंदना इत्यादि सहित) बिना मूल्य. (पोष्ट खर्च ०)०। भेजना)

५ धर्मतत्व संग्रह (दया विधि धर्म का विस्तार पूर्वक उपदेश हिंदीमें किया गया है बहुत उत्तम पुस्तक है) मूल्य रु. १)

गुजरातीमें

१ आलोयणा ०)॥

२ धर्मतत्वसंग्रह १)

३ चार मत ०)॥ १ ० प्रतके ६ ८)

४ हित शिक्षा (सर्व धर्मके लिय अत्यंत उपयोगी पुस्तक. गायकवाड सरकारने मंजुर किया है १२०० प्रत छप गइ है) मूल्य रु. ०। १० प्रतका १॥

५ सती दमयंती (सरकारने मंजुर की है) ०–१– पक्का पुठा ०॥

६ सदुपदेशमाळा (१२ नीतिकी रसमयी वार्ताओ) रु ०॥

७ मधुमक्षिका ०।

८ आवश्यक भावार्थ प्रकाश (प्रतिक्रमण अर्थ और टीका सहित.) रु ०॥

पत्र व्यवहार —" जैन हितेच्छु " ऑफिसका मेनेजर

सारंगपुर—अहमदावाद (गुजरात)

भूमिका.

सत्य धर्माभिलाषी विद्वज्जनों को विदित हो कि—इस घोर कलिकाल में विशेष करके मतियों की सम्मति न होनेसे और पूर्व की अपेक्षा प्रीति के कम होजाने से अर्थात् परस्पर विरोध होने के कारण, अनेक प्रकार के मत मतान्तरों का प्रचार हो रहा है, जिसको देख कर विद्वान् पुरुष आत्मार्थी निष्पक्षदृष्टिवाले कुछ शोक सा मानकर बैठ रहते हैं. परन्तु इतना तो विचारना ही पड़ता है कि इस मनुष्य लोक में दो प्रकार के मनुष्य हैं, (१) आर्य्य और (२) अनार्य्य अनार्य्यों का तो कहना ही क्या है? जो आर्य्य हैं उनमें भी दो प्रकार के मत हैं (१) आस्तिक, और (२) नास्तिक. "आस्तिक" उसको कहते हैं "जो होते पदार्थ को होता कहे", अर्थात्—

१ सर्वज्ञ-सर्वदर्शी-निष्कलंक-निष्प्रयोजन-शुद्ध चेतन "परमेश्वर-परमात्मा" है,

२. चेतना-लक्षण,सोपयोगी,सुख ऽ ख-के वेदक (अर्थात् जाननेवाले) अनन्त 'जीव' भी हैं,

३. रूपी (रूपवाले) सर्व पदार्थोंका उपादान कारण परमाणु आदिक "जड़"भी हैं,

४. पुण्य-पाप रूप "कर्म"भी है, तिसका "फल" भी है,

५. " लोक "-परलोक"-"नर्क"-"देवलोक" भी है,

६ "बंध" और "मोक्ष" भी है,

७ " धर्मावतार " तीर्थंकर जिनेश्वर देव भी हैं, "धर्म" भी है, और "धर्मोपदेशक" भी हैं,

८ "कर्मावतार" बलदेव-वासुदेव भी हैं

इत्यादिक ऊपर लिखे पदार्थों को 'अस्ति' कहे सो "आस्तिक", और जो 'नास्ति'

कहे सो "नास्तिक", यथा [१] परमेश्वर नहीं, [२] जीव नहीं, [३] उपादान कारण परमाणु नहीं, [४] पुण्य-पाप नहीं, [५] लोक-परलोक-नर्क-स्वर्ग-नहीं, [६] बंध-मोक्ष नहीं, [७] धर्मावतार तीर्थंकर जिनेश्वर देव नहीं, धर्म नहीं, धर्मोपदेशक नहीं, और [८] कर्मावतार बलदेव-वासुदेव नहीं यह चिह्न नास्तिकों के हैं

यथा पाणिनीय अपने सूत्रमें यह कहता है—"परलोकोऽस्ति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिक" और "परलोको नास्ति मतिर्यस्यास्तीति नास्तिक"

परन्तु यह आस्तिक-नास्तिकपन नहीं है, जैसे कई एक अल्पज्ञ जन कह देतेहैं कि, "जो हमारे माने हुए मत को तथा शास्त्र को माने सो आस्तिक, और जो न माने सो नास्तिक" यह आस्तिक और नास्तिक के भेद नहीं हैं, भला ! यों तो सब ही कह देंगे कि, जो हमारे मत को स्विकार न करे सो नास्ति-

क. यह आस्तिक-नास्तिकपन क्या हुआ ? यह तो ऊगमा ही हुआ !

बस ! नास्तिकों की वात तो अलग रहेने दो। अब आस्तिकों में जी बहुत मत हैं परन्तु बिचारदृष्टि से देखा जावे तो आस्तिकों में दो मत की प्रवृत्ति बहुत प्रसिद्ध है, (१) जैन और (२) वैदिक क्योंकि आर्य्य लोगों में कई शाखे जैनशास्त्रों को मानती हैं, और बहुत शाखें वेदों को मानती हैं. अर्थात् जैनशास्त्रों के माननेवालों में कई मत हैं, और वैदिक मतानुयायीओं में तो बहुत ही मतभेद हैं

अब विद्वान पुरुषों को विचारणीय यह है कि, इन पूर्वोक्त दोनो में क्या २ भेद हैं ? वास्तव में तो जो अच्छी २ वातें हैं उनको तो सव ही विद्वान प्रमाणिक समझते हैं और भेद भी हैं, परन्तु सव से वडा भेद तो जैन और वेद में ईश्वर कर्त्ता-अकर्त्ताके वि-

षय में है यथा कईएक मत जैन, बौध, जैमिनी, मीमांसा, कपिल, सांख्य आदि ईश्वर को कर्त्ता नहीं मानते हैं, और वैदिक, वेदव्यास, गौतमन्याय, ब्राह्मण, वैष्णव, शैव, आदिक ईश्वर को कर्त्ता मानते हैं.

अब ईश्वर के गुण, और ईश्वर का कर्त्ता होना अथवा न होना, इसका निश्चय करने को, और कुछ मुक्ति के विषय में स्व मतपरमत के मतान्तर का संक्षेप मात्र कथन करने के लिये " मिथ्यात्व तिमिर नाशक " नाम ग्रंथ बनाने की इछा हुई इसमें जो कुछ बुद्धि की मन्दता से न्यूनाधिक वा विपरित लिखा जावे तो सुज्ञ जन कृपापूर्वक उसे सुधार लेवें. ऐसे सज्जन पुरुषों का बडा ही उपकार समझा जावेगा

यह ग्रथ आद्योपान्त विचारपूर्वक निष्पक्षपात दृष्टि से (- *With UnprejudicedMind*) अवलोकन करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषों को मिथ्या भ्रम रूप रोगके विनाश करनेके लिये औष-

ध रूप उपकारी होगा

इस ग्रंथ में ईश्वरको कर्त्ता अकर्त्ता मानने के विषय में १५ प्रश्नोत्तर हैं, जिनमें ईश्वर को कर्त्ता मानने में चार दोष दिखाये गये हैं, और कर्म को कर्त्ता मानने के विषय में पदार्थज्ञान अर्थात् जीवका और पुद्गल का स्वरुप संक्षेप मात्र युक्तियों से स्पष्ट रीति से सिद्ध किया गया है और जो वेदानुयायी पण्डित ब्राह्मण, वैष्णव आदिक हैं वह तो आवागमन से रहित होने को मोक्ष मानते हैं, परन्तु जो नवीन वेदानुयायी 'दयानन्दी' वर्ग हैं वह मोक्ष को भी आवागमन में ही दाखिल करते हैं इस विषय का भी यथामति युक्तियों द्वारा खण्डन किया गया है इसके अतिरिक्त, यत्किञ्चित् वेदान्ती अद्वैतवादी नास्तिकों के विषय में ३० प्रश्नोत्तर हैं, जिनमें उनही के ग्रथानुसार द्वैतभाव और आस्तिकता सिद्ध की गई है

श्री गुमानबाई गोलेछा की तरफ से भेंट—

(श्री परमेष्ठिने नमः)

श्री

सम्यक्त्व सूर्योदय जैन.

अर्थात्

मिथ्यात्व तिमिरनाशक.

आरिया (दयानन्दी)—तुम ईश्वर को मानते हो वा नहीं ?

जैनी—हा ! मानते हैं

आरिया—तुम सुनी सुनाई युक्ति से मानते हो वा तुमारे खास मत में अर्थात् किसी मूल सूत्र में भी लिखा है ?

जैनी—मूल सूत्र में भी लिखा है

आरिया—सूत्रों के नाम ?

जैनी—(१) आचाराङ्गजी, (२) समवायाङ्गजी, (३) भगवतीजी.

आरिया—इन पूर्वोक्त सूत्रो में ईश्वर

को किस प्रकार से माना है ?

जैनी —श्रीमत् आचाराङ्गजी के अध्ययन पाचवें, उद्देशे छठे के अन्त में एसा पाठ है —

गाथा

"न काऊ, न रूहे, न संगे, न इत्थी, न पुरुसे, न अन्नहा परिणे, सन्ने, उवमाण विज्जइ, अरुवी सत्ता, अपय सपय नत्थी, न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे, इच्चे तावती तिवेमि"

जिसका अर्थ यह है कि, मुक्त रूप परमात्मा अर्थात् सिद्ध जिसको (न काऊ) काय नहीं अर्थात् निराकार, (न रूहे) जन्म मरण से रहित अर्थात् अजर अमर, (न संगे) राग द्वेषादि कर्म का संग रहित अर्थात् वीतराग सदेव एक स्वरूपी आनद रूप, (न इत्थी न पुरूसे) न स्त्री, और न पुरुष उपलक्षण से, न क्लीब, (न अन्नहा परिणे) न-

हीं है जिसकी अन्यथा प्रज्ञा अर्थात् विस्मृति नहीं,--अल्पज्ञ नहीं, (सन्ने) ज्ञानसंज्ञा अर्थात् केवलज्ञानी सर्वज्ञ, (उवमाण विजाइ) उपमा न विद्यते अर्थात् इस संसार में कोइ ऐसी वस्तु नहीं कि जिसकी उपमा ईश्वर को दी जावे, (अरुवीसत्ता) अरूपीपन, (अपय सपयनत्थी) स्थावर जंगम अवस्था विशेष नत्थी, (न सद्दे) शब्द नहीं, (न रूवे) कोइ रूप विशेष नहीं अर्थात् श्याम, श्वेत आदि वर्ण नहीं, (न गन्धे) गन्धि नहीं, (न रसे) मधु, कटु आदि रस नहीं, (न फासे) शीतोष्णादिक स्पर्श नहीं, (इच्चे) इति, (तावती) इत्यावत्, (तिब्बेमि) ब्रवीमि=कहता हु

आरिया —यह महिमा तो मुक्त पद की कही है, ईश्वरकी नहीं

जैनी —अरे भोले ! मुक्त है सो ईश्वर है, और ईश्वर है सो मुक्त है

इस स्थानमें मुक्त नाम ईश्वर का ही है

को किस प्रकार से माना है ?

जैनी—श्रीमत् आचाराङ्गजी के अध्ययन पाचवें, उद्देशे छठे के अन्त में एसा पाठ है—

गाथा

"न काऊ, न रूहे, न संगे, न इत्थी, न पुरुसे, न अन्नहा परिणे, सन्ने, उवमाणविजाइ, अरुवी सत्ता, अपय सपय नत्थी, न सद्दे, न रूवे, न गधे, न रसे, न फासे, इच्चे तावती तिवेमि"

जिसका अर्थ यह है कि, मुक्त रूप परमात्मा अर्थात् सिद्ध जिसको (न काऊ) काय नहीं अर्थात् निराकार, (न रूहे) जन्म मरण से रहित अर्थात् अजर अमर, (न सगे) राग द्वेषादि कर्म का सग रहित अर्थात् वीतराग सदैव एक स्वरूपी आनद रूप, (न इत्थी न पुरूसे) न स्त्री, और न पुरुष उपलक्षण से, न क्लीब,(न अन्नहा परिणे) न-

चिन्त्य; असख्य, आद्यं अर्थात् सब से प्रथम जहातक बुद्धि पहुंचावें तुम्हें पहिले ही पावें अर्थात् अनादि, ब्रह्मा ईश्वर अर्थात् ज्ञान आदि ऐश्वर्य्य का धारक, सब से श्रेष्ठ अर्थात् सब से उच्च पदवाला, अनन्तम् जिसका अन्त नहीं, अनंगकेतु=कामदेव-विकारबुद्धिके प्रकाश रुपी सूर्य्य को ढकने वाला केतु रुप जीस्का ज्ञान है, योगीश्वरम्, विदित हुआ है योग स्वरुप जीनकु, अनेकमेकम् अर्थात् परमेश्वर एक भी है, और अनेक भी है, भावत्वे एक, द्रव्यत्वे अनेक, अर्थात् इश्वर पदमें द्वैत भाव नहीं, ईश्वर पद एक ही रूप है इत्यादि नामों से तथा ज्ञान स्वरूप और निर्मल रूप कीर्त्तन करते है

आरिया —यह तो मानतुङ्गजी ने ऋषभ देव अवतार की स्तुति की है, सिद्ध अर्थात् ईश्वर की तो नहीं ?

जैनी —ऋषभदेवजी क्या अनादि अ·

क्यों कि इश्वर नाम तो और ऐश्वर्य वालों-
का भी होता है, परन्तु खास नाम ईश्वर का
मुक्त ही ठीक है, जैसे कि स्वामी दयानन्द
ने भी "सत्यार्थ प्रकाश" (संवत १९५४ के
छपे हुए) समुल्लास प्रथम पृष्ठ १६ मी
पक्ति नीचे ३ में ईश्वरका नाम मुक्त लिखा
हैं, इसीको जैन मत में सिद्ध पद कहते हैं.
और भी बहुत से ग्रथों में ईश्वर की ऐसे ही
स्तुति की गई है, जैसे कि मानतुङ्गाचार्य्य कृत
"भक्तामर स्तोत्र" काव्य २४ —

श्लोक

त्वामव्यय विभु मचिन्त्य मसंख्य मा-
द्य। ब्रह्माण मीश्वर मनन्त मनगकेतुम्। यो-
गीश्वर विदितयोग मनेकमेक। ज्ञानस्वरुप म-
मल प्रवदन्ति सन्त ॥ १ ॥

इस उल्लिखित श्लोक का अर्थ—हे प्रभो!
सन्तजन आप को एसा कहते हैं -अव्यय-
म्=अविनाशी, विभुर्म्=सब शक्तिमान्, अ-

ऐसे कर्मबंध और मोक्ष होती है, इत्यादिक. और तुम भी इसी बात को मानते हो, परन्तु यथार्थ न समझने से और प्रकार से कहते हो जैसे कि, ईश्वर ने ऋषियों के हृदय में ज्ञान की प्रेरणा की, तब उन्होंने वेद कहे. सो हे भोले! क्या ईश्वर को राग द्वेष थी, जो कि उन चार ऋषियों के हृदय में ज्ञान दिया, और सब को न दिया?

आरिया—अजी! जिनके हृदय शुद्ध होते हैं, उन्हीं को ज्ञान देते हैं

जैनी—तो बस! वही बात जो हमने ऊपर लिखी है कि ईश्वर ज्ञान नहीं देता, जिन ऋषियों के हृदय तप-संयम से शुद्ध हो जाता है, उनको स्वयं ही ईश्वर का ज्ञान प्राप्त हो जाता है बस! फिर वह ऋषभ-देवजी देहान्त होनेपर रागद्वेष इच्छा संज्ञा के अभाव से मोक्ष अर्थात् ईश्वर परमात्मा के प्रकाश में प्रकाश रुप से प्रविष्ट हुए—शामिल

नन्त थे ? अरे भाई ! ऋषभदेवजी तो राज-
पुत्र, धर्मावतार, तीर्थंकर देव हुए हैं, अर्थात्
उन्होने राज को त्याग और संयम को साध,
निर्विकार चित्त—निज गुण रमण—आत्मानन्द
पाया, सब अन्त करण की शुद्धि द्वारा ईश्वरी-
य ज्ञान प्रकट हुआ, जिसके प्रयोग से उ-
न्होने जाना और देखा कि, शुद्ध चेतन—
परमात्मा परमेश्वर भी ऐसे ही सर्व दोष
रहित—सर्वदा आनन्द रूप है. तब अज्ञान
का अन्त होकर, केवल ज्ञान प्रगट हुआ,
लोकालोक, जड़—चेतन, सूक्ष्म—स्थूल, सर्व
पदार्थो को प्रत्यक्ष जाना, अर्थात् सर्वज्ञ हुए
फिर परोपकार के निमित्त, देश देशान्तरों में
सत्य उपदेश करते रहे, अर्थात् ईश्वर सिद्ध
स्वरुप ऐसा है—और जीवात्मा का स्वरुप एसा
है—और जड़ पदार्थ परमाणु आदि का
स्वरुप ऐसा है—और इनका स्वभाव जड़ में
जड़ता, चेतन में चेतनता, अनादि है—और

ऐसे कर्मबंध और मोक्ष होती है, इत्यादिक. और तुम भी इसी बात को मानते हो, परन्तु यथार्थ न समझने से और प्रकार से कहते हो जैसे कि, ईश्वर ने ऋषियों के हृदय में ज्ञान की प्रेरणा की, तब उन्होंने वेद कहे. सो हे भोले ! क्या ईश्वर को राग द्वेष थी, जो कि उन चार ऋषियों के हृदय में ज्ञान दिया, और सब को न दिया ?

आरिया—अजी ! जिनके हृदय शुद्ध होते हैं, उन्हीं को ज्ञान देते हैं

जैनी—तो बस ! वही बात जो हमने ऊपर लिखी है कि ईश्वर ज्ञान नहीं देता, जिन ऋषियों के हृदय तप–संयम से शुद्ध हो जाता है, उनको स्वयं ही ईश्वर का ज्ञान प्राप्त हो जाता है बस ! फिर वह ऋषभ-देवजी देहान्त होनेपर रागद्वेष इच्छा संज्ञा के अभाव से मोक्ष अर्थात् ईश्वर परमात्मा के प्रकाश में प्रकाश रुप से प्रविष्ट हुए—शामिल

हुए उस मोक्षपद सिद्ध स्वरुप की स्तुति की है. और इसी प्रकार से तुम लोग नी मानते हो. जैसे कि सम्वत् १९५४ के छपे हुए "सत्यार्थ प्रकाश" के प्रथम समुल्लास की ३ री पृष्ठ ११ वीं पंक्तिमें लिखा है, कि "ॐ" आदि परमेश्वर के नाम यजुर्वेद में आते हैं, और ४ र्थ पृष्ट नीचेकी १म पंक्ति में और पृष्ट ५ मी की ऊपरली १म पक्ति में लिखा है, कि सर्व वेद सर्व धर्म अनुष्ठान रूप तपश्चरण जिसका कथन मान्य करते, और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्य्याश्रम करते हैं, उसका नाम "ॐ"कार है. अब समझने की यह वात है, कि जिसकी प्राप्ति अर्थात् परमेश्वर के मिलने की इच्छा करके तप आदि करते हैं अर्थात प्राप्ति होना, मिलना, शामिल होना इनका वास्तव में एक ही अर्थ है

आरिया—जैन मत में तो, जीव त-

प—संयम से शुद्ध हो कर मुक्त होता है उसे ही सिद्ध अर्थात् ईश्वर मानते हैं; अनादि सिद्ध अर्थात् ईश्वर कोई नहीं मानते हैं

जैन —उत्तराध्ययन सूत्र—अध्ययन ३६ गाथा ६५ में सिद्ध को ही अनादि कहा है –

(गाथा.)

एगत्तेण साइया अपजावसीया विय पुहुत्तेण अणाइया अपजावसिया विय ॥६६॥

(एगत्तेण) कोइ एक तप–जप से निष्कर्म हो कर सिद्धपद को प्राप्त हुआ उसकी अपेक्षा से सिद्ध (साइया) आदि सहित, (अपजावसीया) अन्त रहित माना गया है, और (पहुत्तेण) इस से पृथक् बहुत की अपेक्षा से सिद्ध (अनाइया) आदि रहित अर्थात् जिसका आदि नहीं है, (अपजावसिया)

अन्त रहित (अन्त नहीं जिसका) अर्थात्, अनादि-अनन्त ऐसें कहा है जो महात्मा कर्म क्षय करके मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं उन-की अपेक्षा से तो सिद्ध, आदि सहित और अन्त रहित माना गया है; और जो सिद्ध पद परम्परा से है वह अनादि-अनन्त है.

(आरिया-) वह भी तो कभी सिद्ध बना होगा.

(जैनी-) बना हुआ कहे तो आदि हुइ, अनादि की तो आदि नहीं हो सकती-और अनन्तका अन्त नहीं हो सकता क्योंकि जब सूत्रमें सिद्धको-अनन्त कह दिया तो फिर बना हुआ अर्थात् आदि कैसे कही जावे?

(आरिया-) "सत्यार्थ प्रकाश" ४८८ पृष्ठ १३ वीं पंक्तिमें लिखा है कि जिस पदार्थ-को स्वभाव 'एक देशी' होवे उसका गुण-कर्म स्वभावभी 'एक देशी' हुआ करता है

जैनी—यह बात ठीक नहीं है, क्यों कि जो मोटा और बड़ा हो क्या उसमें गुण भी बड़े होवें? और जो छोटा-पतला हो उसमें गुण भी छोटे अर्थात् स्वल्प होवें? परन्तु सूर्य्य तो 'एक देशी' और छोटा होता है, और उसका प्रकाश बड़ा—सर्वव्यापक होता है, कहो जी, यह कैसे?

आरिया—तुम इश्वर को कर्त्ता मानते हो या नहीं?

जैनी—ईश्वर कर्त्ता होता तो हम मानते क्यों नहीं?

आरिया—तो क्या ईश्वरकर्त्ता नहीं है?

जैनी—नहीं, क्यों कि हमारे सूत्रों में और हमारी बुद्धि के अनुसार, किसी प्रमाण से भी ईश्वर कर्त्ता सिद्ध नहीं हो सकता है तुम ईश्वर को कर्त्ता मानते हो?

आरिया —हां, हमारे मत का तो सि-
द्धान्त ही यह है कि ईश्वर कर्त्ता है

जैनी —ईश्वर किस २ पदार्थ का क-
र्त्ता है ?

आरिया —सर्व पदार्थों का

जैनी —पदार्थ तो कुल दो हैं—(१)
चेतन और(२) जड़ चेतन के २भेद—(१) पर-
मेश्वर चेतन और(२) संसारी अनन्त जीव चे-
तन जड़के २भेद -(१) अरूपी(आकाश काला-
दि)और(२)रूपी(परमाणु आदि)सो तो अनादी
हैं अब यह बताओ कि इश्वर कोइ नया
जीव अथवा नया परमाणु बना सकता है
वा नहीं

आरिया —नहीं

जैनी —तो फिर तुम्हारे ईश्वर नें बनाया
ही क्या ? बस ! तुम्हारा पूर्वोक्त ईश्वर को सर्व
पदार्थ कर्त्ता कहना यह मिथ्या सिद्ध हुआ

(आरिया मौन हो रहा)

जैनी—अच्छा ! यह तो बताओ कि ईश्वर (स्वतंत्र) खुद अख्तियार है वा परतंत्र (पराधीन) अर्थात् बे अख्तियार है

आरिया—वाहजी वाह ! आपने यह कैसा प्रश्न किया ? ईश्वर के स्वतंत्र होने में कोई किसी प्रकार का सन्देह कर सकता है ? ईश्वर तो स्वतंत्र ही है

जैनी—ईश्वर किस २कर्म में स्वतंत्र है ?

आरिया—ईश्वर के नी क्या कर्म हुआ करते हैं ?

जैनी—तुम तो ईश्वर के कर्म मानते हो

आरिया—हम ईश्वर के कैसे कर्म मानते हैं ?

जैनी—तुम ईश्वर को न्यायकारी (न्याय करने वाला-दण्ड देने वाला), अपनी

आरिया —हा, हमारे मत का तो सि-
द्धान्त ही यह है कि ईश्वर कर्त्ता है

जैनी —ईश्वर किस २ पदार्थ का क-
र्त्ता है ?

आरिया —सर्व पदार्थों का.

जैनी —पदार्थ तो कुल दो हैं—(१)
चेतन और (२) जड़. चेतन के २ भेद -(१) पर-
मेश्वर चेतन और (२) संसारी अनन्त जीव चे-
तन जड़ के २ भेद -(१) अरूपी (आकाश काला-
दि) और (२) रूपी (परमाणु आदि) सो तो अनादी
हैं अब यह बताओ कि इश्वर कोइ नया
जीव अथवा नया परमाणु बना सकता है
वा नहीं.

आरिया —नहीं

जैनी —तो फिर तुम्हारे ईश्वर नें बनाया
ही क्या ? बस ! तुम्हारा पूर्वोक्त ईश्वर को सर्व
पदार्थ कर्त्ता कहना यह मिथ्या सिद्ध हुआ

जैनी—तो फिर ईश्वर भी हमारा ही भाई ठहरा, जैसे हम अनेक कर्म करते हैं ऐसे ही ईश्वर भी करता हैं तो फिर जिस प्रकार से हम को कर्म का फल भोगना पडता है, इसी प्रकार से ईश्वर को भी भोगना पडता होगा, वा, जैसे हमें कर्म फल भुगताने वाला ईश्वर को मानते हो, ऐसे ही ईश्वर को भी कोइ और ही कर्म फल भुगताने वाला मानना पडेगा

(आरिया मौन हो रहा)

जैनी—जीव स्वतंत्र है वा परतंत्र ?

आरिया—स्वतंत्र

जैनी—जीव में स्वतंत्रता अनादि है या आदि ? स्वत सिद्ध है वा किसीने दी है? यदि अनादि मानोगे तो जीव स्वय ही कर्त्ता सिद्ध हुआ, इसमें फिर ईश्वर की क्या आवश्यकता (जरूरत) रही ? यदि आदि से (किसी की

इछा के अनुसार सृष्टि के रचने वाखा मान-
ते हो

आरिया—हा! इसको तो हम स्विकार
करते हैं.

जैनी—न्याय करना ज्ञी सो एक कर्म ही
है, और दण्ड देना ज्ञी एक कर्म ही है इछा
ज्ञी तो अन्त करण की स्थूख प्रकृति (कर्म)
है सृष्टि का रचना ज्ञी तो कर्म है

आरिया—(किश्चित् मौन हो कर) हा!
मुझे स्मरण है कि हमारे "सत्यार्थ प्रकाश"
के ६३४ पृष्ठ की २२ पंक्तिमें ईश्वर और उ-
सका गुण कर्म स्वज्ञाव ऐसे खिखा है

जैनी—ज्ञखा! यह तो बताओ कि ईश्वर
कोन २ से और कितने कर्म करता है?

आरिया—कर्मो की संख्या (गिनती)
तो नहीं की है

जैनी—इस रीति से. आप यह तो बताइये कि ईश्वर को न्यायकारी तुमारे मत में किस प्रकार से मानते हैं?

आरिया—राजा की तरह, जैसे चोर चोरी कर लेता है, फिर वह चोर स्वयं ही कारागार में (कैद में) नहीं जाता है, उस को राजा ही दण्ड देता है (कैद करता है) ऐसे ही ईश्वर जीवों को उन के कर्म का दण्ड (फल) देता हैं.

जैनी—वह तस्कर (चोर) राजा की सम्मति (मर्जी) से चोरी करता है वा अपनी ही इच्छा से?

आरिया—अपनी इच्छा से, क्यों कि राजा लोगों ने न्यायकारी पुस्तक बना रक्खे हैं, और प्रत्येक स्थान में घोषणा करवा दी है कि कोई भी तस्करता (चोरी) मत करे, और अपने पहरेदार नियत कर रक्खे हैं, इत्यादि

–ईश्वर की) दी हुइ मानोगे तो ईश्वर में दो दोष प्राप्त होंगे

आरिया —कौन २ से ?

जैनी –एक तो प्रथम अल्पज्ञता और द्वितीय अन्यायकारिता

आरिया —किस प्रकार से ?

जैनी —इस को हम विस्तारपूर्वक आगे कहेंगे अब तो तुम यह बताओ कि तुम ईश्वर में कौन २से गुण मानते हो ?

आरिया—गुण तो बहुत से हैं, परन्तु सक्षेप से चार गुण विशेष प्रधान (बड़े) हैं

जैनी –कौन २से ?

आरिया –१ सर्वज्ञ, २ सर्व शक्तिमान्, ३ न्यायकारी और ४ दयालु

जैनी–ईश्वर को कर्त्ता मानने से ईश्वर में इन चारों ही गुणों का नाश पाया जावेगा

आरिया—किस प्रकार से ?

सुसम्भ्द अर्थात् होश्यार हो जावे तो राजा को कैसे समझना चाहिये ?

आरिया –अन्यायशास्त्री अर्थात् बे-इनसाफ.

जैनी -बस ! अब देखिये कि तुम्हारे ही मुख से ईश्वर को राजा की तरह कर्त्ता मानने में तीन गुणो का तो नाश सिद्ध हो चुका

आरिया–किस प्रकार से ?

जैनी —क्या तुम्हें प्रतीत (मालूम) नहीं हुआ ?

आरिया –नहीं

जैनी –लो, सुनो ! जब कि तुम ईश्वर के कर्तृत्व अर्थात् कर्त्ता होने के विषय में राजा का दृष्टान्त देते हो, तो इस में युक्ति सुनो. भला ! यह तो बताइये कि चोर ईश्वर की प्रेरणा (इच्छा) से चोरी करने में प्रवृत्त होता है वा अपनी इच्छा से ?

जैनी—क्या, राजा में चोरों के रोकने की शक्ति नहीं है?

आरिया—शक्ति तो है, परन्तु राजा के परोक्ष चोरी हुआ करती है

जैनी—यदि राजा को किञ्चित् मात्र भी समाचार मिले, कि चोर चोरी करेंगे वा कर रहे हैं, तो राजा चोरी करने देवे वा नहीं?

आरिया—कदाचित् भी नहीं

जैनी—तो क्या करे?

आरिया—यदि राजा को प्रतीत (मालूम) हो जावे कि मेरे नगर में चोर आए हैं वा चोरी कर रहे हैं अथवा करेगें, तो राजा उनका प्रथम ही यत्न कर देवे अर्थात् जमानत ले लेवे किंवा कैद कर देवे, इत्यादिक

जैनी—यदि राजा ऐसा प्रबन्ध (इन्तियाम्) न करे अर्थात् प्रथम तो चैनसे चोरी कर लेने देवे और फिर दण्ड देने को

सुसन्न-६ अर्थात् होश्यार हो जावे तो राजा को कैसे समझना चाहिये ?

आरिया –अन्यायशाली अर्थात् बे-इनसाफ.

जैनी -बस ! अब देखिये कि तुम्हारे ही मुख से ईश्वर को राजा की तरह कर्त्ता मानने में तीन गुणो का तो नाश सिद्ध हो चुका

आरिया–किस प्रकार से ?

जैनी —क्या तुम्हें प्रतीत (मालूम) नहीं हुआ ?

आरिया –नहीं.

जैनी –लो, सुनो ! जब कि तुम ईश्वर के कर्त्तृत्व अर्थात् कर्त्ता होने के विषय में राजा का दृष्टान्त देते हो, तो इस में युक्ति सुनो. भला ! यह तो बताइये कि चोर ईश्वर की प्रेरणा (इच्छा) से चोरी करने में प्रवृत्त होता है वा अपनी इच्छा से ?

जैनी —क्या, राजा में चोरों के रोकने की शक्ति नहीं है ?

आरिया —शक्ति तो है, परन्तु राजा के परोक्ष चोरी हुआ करती है

जैनी —यदि राजा को किञ्चित् मात्र भी समाचार मिले, कि चोर चोरी करेंगे वा कर रहे हैं, तो राजा चोरी करने देवे वा नहीं ?

आरिया —कदाचित् भी नहीं

जैनी —तो क्या करे ?

आरिया —यदि राजा को प्रतीत (मालूम) हो जावे कि मेरे नगर में चोर आए हैं वा चोरी कर रहे हैं अथवा करेंगें, तो राजा उनका प्रथम ही यत्न कर देवे अर्थात् जमानत ले लेवे किंवा कैद कर देवे, इत्यादिक

जैनी —यदि राजा ऐसा प्रबन्ध (इन्तियाम्) न करे अर्थात् प्रथम तो चैनसे चोरी कर लेने देवे और फिर दण्ड देने को

सुसन्न-ह अर्थात् होश्यार हो जावे तो राजा को कैसे समझना चाहिये ?

आरिया—अन्यायशाली अर्थात् बे-इनसाफ.

जैनी—बस ! अब देखिये कि तुम्हारे ही मुख से ईश्वर को राजा की तरह कर्त्ता मानने में तीन गुणो का तो नाश सिद्ध हो चुका

आरिया—किस प्रकार से ?

जैनी—क्या तुम्हें प्रतीत (मालूम) नहीं हुआ ?

आरिया—नहीं

जैनी—लो, सुनो ! जब कि तुम ईश्वर के कर्तृत्व अर्थात् कर्त्ता होने के विषय में राजा का दृष्टान्त देते हो, तो इस में युक्ति सुनो भला ! यह तो बताइये कि चोर ईश्वर की प्रेरणा (इच्छा) से चोरी करने में प्रवृत्त होता है वा अपनी इच्छा से ?

आरिया –अपनी ही इच्छा से

जेनी –क्या, ईश्वर में चोरों को चोरी से रोकने की शक्ति नहीं है? क्यों कि, विना ही इच्छा के काम तो दुर्बल अर्थात् कमजोर वा परतंत्र [पराधीन] के होते हैं, और इश्वर तो स्वतंत्र [खुद मुख्त्यार] और सर्वशक्तिमान् स्वीकार [माना] गया है, तो फिर उस की इच्छा के विना ही चोरी क्यों कर हुइ ? इससे यह समझा जावेगा कि ईश्वर सर्व शक्तिमान् नहीं है, क्यों कि ईश्वर की इच्छा के विना ही कुत्सित (खोटे) कर्म होते हैं, जिस प्रकार से तुमारे सम्वत् १९५४ के छपे हुए " सत्यार्थ प्रकाश " के १९२ पृष्ट में लिखा है-(प्रश्न) परमेश्वर क्या चाहता है? (उत्तर) सव की भलाइ और सब का सुख चाहता है अब विचारने की वात है कि वह तो चाहता नहीं कि किसी की वुराई वा किसी को कष्ट हो (कुकर्म हों),परन्तु होते है

इस लिये ज्ञात हुआ कि ईश्वर कारण वश अर्थात् लाचारी अमर से लाचार है इस वास्ते यह प्रथम ईश्वर में अशक्ति दोष सिद्ध हुआ

आरिया -ईश्वर में चोरों को रोकने की शक्ति तो है परन्तु ईश्वर की बेखबरी में चोरी होती है.

जैनी –तो फिर ईश्वर सर्वज्ञ न रहा. क्यों कि सर्वज्ञता के विषय में बेखबरी का शब्द तो कदापि नहीं घट सकता जो सर्वज्ञ है वह तो सर्व काल (भूत, भविष्य, वर्त्तमान) में सर्व पदार्थों को जानता है इस लिये यह द्वितीय [दूसरा] अल्पज्ञता रूप दोष सिद्ध हुआ

आग्यिा —ईश्वर ने तो राजा की तरह (न्याय पुस्तक) अर्थात् कानून के पुस्तक वेद बना दिये हैं, और पहरेदार वत् रक्षक साधु वा उपदेशक घोषणा अर्थात् ढंढोरा फेर रहे हैं, परन्तु जीव नहीं मानते

जैनी—अरे भाई ! यही तो ईश्वर के कर्त्ता मानने में, वा राजा की भान्ति दृष्टान्त देने में, दो दोष सिद्ध होने का कारण ही है. क्यों कि राजा को अल्प शक्तिमान् और अल्पज्ञ होनेसे ही न्याय पुस्तक–कानून की किताबें बनाने की और पहरेदारों के रखने की आवश्यकता अर्थात् जरूरत होती है. ऐसे ही ईश्वर में कर्त्ता मानने से दो दोष सिद्ध हुए हैं क्यों कि जिसमें सर्वशक्ति हो और जो सर्वज्ञ हो, उसकी इच्छा के प्रतिकूल अर्थात् वरखिलाफ काम कभी नहीं हो सकता यदि हो भी तो पूर्वोक्त राजा कीसी तरह तृतीय [तीसरा] दोष अन्यायकारित्व का अर्थात् वेइनसाफ होने का माना जावेगा जैसे कि किसी पुरुष के कई एक पुत्र हैं और पिता की इच्छा सब पुत्रों के सदाचारी (नेक) और बुद्धिमान् [अक्लमन्द] और धनाढ्य (दौलतमन्द) होने की है. यदि पिता

के अधीन हो तो सब को पूर्वोक्त एक सार करे परन्तु पिता के कुछ अधीन में नहीं, उनही के पूर्व कर्मों के अधीन है कोई कर्मों के अनुसार बुद्धिमान और कोई मूर्ख, और कोई धनाढ्य ओर कोई दरिद्री, और कोई कुपात्र, और कोई सुपात्र होते हैं अब देखिये कि किसी के पुत्रने किसी कारण से जहर खा लिया, जब उस को कष्ट हुआ तब उस का पिता और पिता के सज्जन जन आए और मालूम किया कि इसने जहर खाया है, तब उस के पिता को सब सज्जन पुरुष उपालम्भ (उलाना) देने लगे कि तूने इस को जहर क्यों खाने दिया? तब उसका पिता बोला, कि भला! मेरे सन्मुख (सामने) खाता तो मैं कैसे खाने देता? मेरे परोक्ष [परोखे] खा लिया है. अथवा फिर उस के पिताने कहा कि खाया तो मेरे प्रत्यक्ष [सामने] ही है. तब सज्जन पुरुषों ने कहा कि तूने जहर खाते

जैनी—अरे भाई! यही तो ईश्वर के कर्त्ता मानने में, वा राजा की भान्ति दृष्टान्त देने में, दो दोष सिद्ध होने का लक्षण ही है क्यों कि राजा को अल्प शक्तिमान् और अल्पज्ञ होनेसे ही न्याय पुस्तक-कानून की किताबें बनाने की और पहरेदारों के रखने की आवश्यकता अर्थात् जरूरत होती है. ऐसे ही ईश्वर में कर्त्ता मानने से दो दोष सिद्ध हुए हैं क्यों कि जिसमें सर्वशक्ति हो और जो सर्वज्ञ हो, उसकी इच्छा के प्रतिकूल अर्थात् वर्खिलाफ काम कभी नहीं हो सकता यदि हो भी तो पूर्वोक्त राजा कीसी तरह तृतीय [तीसरा] दोष अन्यायकारित्व का अर्थात् वेइनसाफ होने का माना जावेगा जैसे कि किसी पुरुष के कई एक पुत्र हैं और पिता की इच्छा सब पुत्रों के सदाचारी (नेक) और बुद्धिमान् [अक्लमन्द] और धनाढ्य (दौलतमन्द) होने की है. यदि पिता

के अधीन हो तो सब को पूर्वोक्त एक सार करे परन्तु पिता के कुछ अधीन में नहीं, उनही के पूर्व कर्मों के अधीन है कोई कर्मों के अनुसार बुद्धिमान और कोई मूर्ख, और कोई धनाढ्य ओर कोई दरिद्री, और कोई कुपात्र, और कोई सुपात्र होते हैं अब देखिये कि किसी के पुत्रने किसी कारण से जहर खा लिया, जब उस को कष्ट हुआ तब उस का पिता और पिता के सज्जन जन आए और मालूम किया कि इसने जहर खाया है, तब उस के पिता को सब सज्जन पुरुष उपालम्भ (उलाना) देने लगे कि तूने इस को जहर क्यों खाने दिया? तब उसका पिता बोला, कि भला! मेरे सन्मुख (सामने) खाता तो मैं कैसे खाने देता? मेरे परोक्ष [परोखे] खा लिया है. अथवा फिर उस के पिताने कहा कि खाया तो मेरे प्रत्यक्ष [सामने] ही है. तब सज्जन पुरुषों ने कहा कि तूने जहर खाते

हुए इसे क्यों कर नहीं रोका? तब पिता बोला कि मैं हटाने में बाकी भी रखता ? मैंने तो इस के हाथ में पुड़िया देखते ही हाथ पकड़ लिया और बहुत निरोध किया अर्थात् हटाया, परन्तु यह तो बलात्कार (जबरदस्ती) से हाथ छुड़ा कर खा ही गया मैं फिर बहुत लाचार हुआ क्यों कि मेरे में इतनी शक्ति कहा थी, जो कि मैं इस के साथ मुष्टियुद्ध अर्थात् मुकम्मुका हो कर इसे जहर खाने से रोकना अब आप समझ लीजिये कि पिता की बेखबरी में और शक्ति से वाह्य (बाहर) हो कर पुत्र के जहर खाने से तो पिता के जिम्मे अन्याय कदापि सिद्ध नहीं हो सकता, परन्तु पिता को खबर भी हो और छुड़ाने की शक्ति भी हो, फिर पुत्र को विष खाने देवे और खाने के अनन्तर (पीछे) पुत्र को दण्ड अर्थात् घर्षण (झिड़का), आदि देवे, तो वह सज्जन पुरुष पिता को अन्यायकर्त्ता (बेइनसाफ)

कहें वा नहीं, कि अरे मूर्ख ! तेरे सामने ही तो इसने विष (जहर) खाया, और यद्यपि तेरे में रोकने की पूर्ण शक्ति भी थी, तथापि तूने उस समय तो रोका नहीं, और अब इसें तूं दण्ड देता है ! अरे अन्यायी ! अब तू भला बनता है !

इसी प्रकार से तुम भी ईश्वर को क्या तो अल्पज्ञ और शक्तिहीन मानोगे नहीं तो अन्यायी यह तृतीय (तीसरा) दोष अवश्य ही सिद्ध हुआ अब चतुर्थ (चौथा) सुनो

कहोजी ! तुम्हारे वेदों में ईश्वरोक्त (ईश्वर की कही हुइ) यह ऋचा है कि "अहिंसा परमो धर्म" ?

आरिया—हां ! हा ! जी सत्य है

जैनी—तो यह लाखों गौ आदिक पशुओं का प्रतिदिन कसाई आदिक वध करते हैं यह क्या ? यदि ईश्वर की इच्छा सें होते हैं, तो ईश्वर की दयालुता कहा रही ? इस भान्ति से यह चतुर्थ (चौथा) दोष निर्दयता का

सिद्ध हुआ और "अहिंसा परमो धर्म" यह कहना कहां रहा? यदि बिना मर्जी से कहो, तो ईश्वर उन हिंसकों (कसाईयों) से डर कर क्या लाचार हो रहता है? जो कि उनको रोक नहीं सकता तो पूर्वोक्त शक्तिहीन ठहरा, अर्थात् सर्वशक्तिमान न रहा.

आरिया —ईश्वर ने जीवों को स्वतंत्रता अर्थात् अख्तियार दे दिया है, इस कारण से अब रोक नहीं सकता, जो चाहें सो करे.

जैनी —बस ! अब तुम्हारे इस कथन से हमारे पूर्वोक्त [पहले कहे हुए] दो दोष सिद्ध हुए

आरिया —कौन २ से वह दोष हैं ?

जैनी —एक तो अल्पज्ञता, और दूसरी अन्यायता

आरिया —किस २ प्रकार से?

जैनी —इस भ्रान्ति से, ईश्वर को प्रतीत (मालूम) न होगा कि यह जीव हिंसा

आदि पूर्वक खोटे कर्म करेंगे यदि मालूम होगा, तो ऐसे २ डुष्ट कर्म करनेवाले जीवों को ईश्वर स्वतंत्रता कदापि न देता इस से प्रथम अल्पज्ञता का दोष सिद्ध हुआ यदि मालूम था, तो ऐसा डुष्ट कर्म करनेवाले जीवों को ईश्वर ने स्वतत्रता (अख्तियारी) दी, सो महा अन्याय है क्यों कि, अब ज्ञी राजा लोग डुष्ट कर्म करने वाले [स्वामी की मर्जी से प्रतिकूल अर्थात् बिना आज्ञा से चलने वाले] डुष्ट जनों को स्वतत्रता नहीं देते हैं इस से दूसरा अन्यायता का दोष सिद्ध हुआ

आरिया—ईश्वर उन कसाईयों से उन जीवों का कर्म फल (वदला) ज़ुगताता है

जैनी—तो फिर ज्यों ज्ञी ईश्वर के ही जिम्मे दोष आवेगा क्यों कि जव गौके जीव ने कर्म कसाईयों से ज़ुगताने वाले करे होंगे, तव ज्ञी तो ईश्वर मौजूद ही होगा फिर वह कर्म ईश्वर ने कैसे करने दिये, जिन का फल (वदला)

भुगताने में ईश्वर को कसाई–पापी बनाने पड़े
यदि ऐसे कहोगे कि वह गौ का जीव स्वतत्र है,
अपनी अख्तियारी सें कर्म करता है, तो
फिर वह जिव स्वयं ही कर्त्ता अर्थात् अपने
कर्मों का कर्त्ता (अपने फेलों का फायल)
रहा, इस से ईश्वर तो कर्त्ता न ठहरा यदि
ऐसे कहोगे कि ईश्वर ने ही जीवों को स्वत-
न्त्रता (अख्तियार) दिया है, तो फिर वही दो
दोष विद्यमान (मौजूद) हैं (१) अल्पज्ञता
और (२) अन्यायता यदि यह कहोगे कि वह
कर्म भी इश्वर ही ने करवाये हैं, तब तुम आप ही
समझ लो कि तुम्हारे ईश्वर की कैसी दया-
लुता और न्यायता है। तुम्हारी भान्ति मुस-
ल्मान लोग भी खुदा को कर्त्ता मानते हैं

मुसल्मान —खुदा के हुक्म विना पत्ता भी
नहीं हिल सकता

जैनी —खुदा को क्या २ मजूर है ?

मुसल्मान —(१) रहम दिली, (२) स-

च बोलना, (३) इमानदारी, (४) बन्दगी वगैर: २

जैनी—क्या २ ना मंजूर है ?

मुसलमान -(१) हरामी, (२) चोरी, (३) चुगलखोरी, (४) बे रहमी, (५) बे इमानी, (६) व्याज खाना, (७) सूअर मास, (८) मदिरा (शराब), वगैर. २

जैनी —तो फिर खुदा के हुक्म विना उपर लिखे हुए दुष्ट (खोटे) कर्म क्यों होते हैं? अब या तो तुम्हारा पहिला कथन [कहना] गलत है कि, खुदा के हुक्म विना पत्ता भी नहीं हिलता, (२) या तो खुदाही के हुक्म से उपर लिखे दुष्कर्म होते हैं। तो यह तुम ही विचार कर लो कि तुम्हारा खुदा कैसे २ दुष्ट कर्म करवाता है ? (३) क्या खुदा के हुक्म से विना दुष्ट कर्म करने वाले खुदा से बलवान् (जबरदस्त) हैं, जो खुदा को रद [अदूल] के निन्दित कर्म करते हैं? अब यह

भुगताने में ईश्वर को कसाई-पापी बनाने पड़े? यदि ऐसे कहोगे कि वह गौ का जीव स्वतंत्र है, अपनी अख्तियारी से कर्म करता है, तो फिर वह जिव स्वय ही कर्त्ता अर्थात् अपने कर्मों का कर्त्ता (अपने फेलों का फायल) रहा, इस से ईश्वर तो कर्त्ता न ठहरा यदि ऐसे कहोगे कि ईश्वर ने ही जीवों को स्वतंत्रता (अख्तियार) दिया है, तो फिर वही दो दोष विद्यमान (मौजूद) हैं (१) अल्पज्ञता और (२) अन्यायता यदि यह कहोगे कि वह कर्म भी ईश्वर ही ने करवाये हैं, तब तुम आप ही समझ लो कि तुम्हारे ईश्वर की कैसी दयालुता और न्यायता है! तुम्हारी भान्ति मुसल्मान लोग भी खुदा को कर्त्ता मानते हैं

मुसल्मान —खुदा के हुक्म विना पत्ता भी नहीं हिल सकता

जैनी —खुदा को क्या २ मंजूर है?

मुसल्मान —(१) रहम दिली, (२) स-

इत्यादी नामक नाई धनदत्त शेठ के पुत्र के लिये ले कर आया और धनदत्त शेठ ने उस नाई की नक्ति नान्ति(अच्छी तरह से) खातिर करी और फिर शेठ ने नाई से पूछा कि, आप प्रसन्न हुए ? तब नाई ने कहा कि,नहीं. फिर दूसरे दिन शेठ ने बहुत अच्छी नान्ति से घेवरादिक पकवान खिलाए और पूछा कि, राजाजी! अब तो प्रसन्न हुए हो? तब नाई ने उत्तर दिया कि, नहीं इसी प्रकार से फिर तीसरे दिन शेठ ने विविध प्रकार की अर्थात् नान्ति २ की वस्तुऐं मोतीचूर और मिलाई, बादाम, पिस्तों के बने हुए मोदक अर्थात् लडू आदिक नोजन करवाये और फिर पूछा कि, जी! अब तो प्रसन्न हो? नाई ने कहा कि,नहीं तब शेठजी लाचार हुए, और उस नाई को विदा किया

बताइये कि इन पूर्वोक्त तीनों बातों में से कौन सी बात सत्य है ? बस ! अब पूर्वोक्त दोनों प्रश्नोत्तरों के अर्थ को निरपक्ष दृष्टि से देखो और सोच समझ कर मिथ्या भ्रम का त्याग करो और सत्य का ग्रहण करो यह पूर्वोक्त चार दोष सिद्ध होने से हम ईश्वर को कर्त्ता नहीं मानते हैं अब तुम ईश्वर के गुण और ईश्वर का कर्त्ता होना और यह चारों दोष भी न आवें ऐसा सिद्ध कर दिखाओ

यदि इस भ्रम से कर्त्ता कहते हो कि जड़ आप ही कैसे मिल जाता है, तो हम आगे चल कर जड़ का स्वरूप का भी किञ्चित् वर्णन करेंगे, उससे तुमने निश्चय कर लेना परन्तु कुड़मा (सम्बधी) वाले नाई की तरह वार २ निषेध (इनकार) न करना, जैसे दृष्टान्त है कि-सुदरपुर नगर में धनदत्त नाम से एक शेठ रहता था, और घर में एक पुत्र भी था वसन्तपुर नगर से सोमदत्त शेठ की कन्या की सगाई

गुरु–धीरज से सुनो! कर्त्ता वा अकर्त्ता जीव ही है.

शिष्य—हाजी! यह तो सत्य है, क्यों कि जीव ही शुभ (अच्छे) और अशुभ (बुरे) कर्म करने में स्वतत्र है परन्तु गुरुजी! इस में एक और सन्देह उपजा है. कि यदि जीव ही कर्त्ता हो, तो फिर जीव अपने आप को दु खी होने का, बूढे होने का, मृत्यु होने का और दुर्गति में जाने का तो कभी यत्न नहीं करता है, फिर यह पूर्वोक्त व्यवस्था (हालतें) क्यों कर होती हैं?

गुरु (थोडा हस कर)–तो भाई! कोइ इश्वरादिक कर्त्ता होगा

शिष्य (ठहर कर)–ऐसा ईश्वर कौनसा है जो जीवों को पूर्वोक्त व्यवस्था (हालतें) देता है? क्यों कि जीव तो अर्थात् हम तो दुःखी होना, बूढे होना, मर जाना, दुर्गति में पडना चाहते नहीं हैं और यह हमें व-

॥ अथ गुरु शिष्य सम्बाद ॥

शिष्य-हे गुरो! सुख-दुःख, जीवन-मरण, सुकृत-दुष्कृत आदिक व्यवहारों का कर्त्ता जीव है वा कर्म, यह आप कृपापूर्वक मुझे भली प्रकार से समझा दीजिये

गुरुः-हे शिष्य! कर्म ही है

शिष्य--यह लो, अपना वस्त्र, वेष, पुस्तक, इनको जलाञ्जलि देता हूं! और अपने घर को जाता हूं!

गुरु-किस कारण से उदासीन हुए हो?

शिष्य-कारण क्या? यदि आप कर्म ही को कर्त्ता कहते हो तो फिर हम लोगों को उपदेश किस लिये करते हो? और ज्ञान शिक्षा क्यों देते हो कि, सुकृत (शुभ कर्म) करो और दुष्कृत [खोटे कर्म] मत करो? क्यों कि जीव के तो कुछ अधीन ही नहीं है न जाने कर्म साधुपन करवावें, न जाने चोरी करावें!

फल नहीं देता है

शिष्य —तो, और किस प्रकार से ?

गुरू —जिस रति से सूर्यका तेज अपनी शक्ति द्वारा सब पदार्थों को प्रफुल्लित करता है, इस प्रकार से ईश्वर भी अपनी शक्ति द्वारा फल देता है

शिष्य—सूर्य क्या २ शक्ति देता है ?

गुरू —अमृत में अमृत शक्ति और जहर में जहर शक्ति, इत्यादिक

शिष्य –अमृत में अमृत शक्ति और जहर में जहर शक्ति तो हुआ ही करती हैं, सूर्य ने अपनी शक्ति द्वारा क्या दिया ? और यह भी पूर्वोक्त तुम्हारा कहना ईश्वर कर्त्ता वाद के मत को बाधक (धक्का देने वाला) है, क्यों कि सूर्य तो जड़ है, उसको तो भले बूरे पदार्थ की प्रतीति नहीं है, कि इस वस्तु से कौन २ सा लाभ और क्या २ हानि होगी तो ते स-

बलात्कार(जबर्दस्ती से) दुःखी और मृत्यु आदि व्यवस्था को प्राप्त करता है क्योंकि कइएक ऐसे २ जवानी में जीवन को खोचते ही मर जाते हैं, जिनके मरने के पश्चात् (पीछे से) सात २ गृहों (घरों) को यत्र (ताखे) लग जाते हैं, और स्त्रियें रुदन करती ही रह जाती हैं क्या यह कष्ट ईश्वर देता है ? यदि ऐसे ईश्वर का कोई स्थान बताओ तो उससे पूछें कि, हे ईश्वर ! जीवों को इतना कष्ट क्यों देते हो ? क्या आप को दया नहीं आती ?

गुरू—कर्म तो स्वय (खुद) जीव ही करता है, ईश्वर तो उनके कर्मानुसार फल-ही देता है

शिष्य—क्या, जिस प्रकार से मजदूरों को मजदूरी का फल (तनखाह) बाबू देता है, ईश्वर भी इसी प्रकार से जीवों के ताईं कर्मों का फल देता है वा और प्रकार से ?

गुरू—मजदूरो की भान्ति जीवों को

शिष्य.—तो ईश्वर को शक्ति कौन देता है?

गुरू—हैं?

शिष्य—स्वामी जी! "हैं" काहेकी? यों तो मानना ही पमेगा कि ईश्वर को नी कोई और ही शक्ति देने वाला होगा, और फिर उसको नी कोइ और ही शक्ति देनेवाला होगा, यथा फेर—फर्रका दृष्टान्त है—

"वसन्तपुर" नाम से एक नगर था वहा का महीपाल नाम सें सूधे स्वनाव वाला राजा था उसकी सन्ना में जो मकद्दमा आता था उसके इजहार मुद्दइ,मुद्दालह जो कुछ देते थे उनको सुन कर वह कुछ नी इनसाफ नहीं करताथा केवल यही कह देता था कि,"फेर?" मुद्दई कहता, कि महाराज! मैने इसे एक हजार रुपैया दिया राजा बोला कि, "फेर?" मुद्दई कहने लगा कि, मुद्दालहने न तो असल दिया और नाहीं सूद दिया तब राजा बोला कि, "फेर?" इसी प्रकार से कचहरी

ब को पुष्टि देता है परन्तु ईश्वर को तुम सर्व-
ज्ञ मानते हो वह अपनी शक्ति (निरर्थक)
अर्थात् निकम्मे पदार्थ कटीली, सत्यानाशी,
कौंचफली आदिक जन्तुओं में सांप, मच्छर
आदिक जीव जो किसी भी कृत्य को सम्पादन
अर्थात् सिद्ध नहीं कर सकते, प्रत्युत (ब-
ल्कि) सब को हानि ही पहुचाते हैं, तो उन्हें
ईश्वर पुष्टि क्यों देता है ? चेतन को तो शुभ
अशुभ, और नफा-नुकशान समझ कर पुष्टि
देनि चाहिये, जैसे कि, मेघ (बादल) तो चाहे
रूमी-करूमी बाग में बरसे, परन्तु माली तो फ-
लदायक को ही सिञ्चन करेगा भला! और
देखो, ईश्वर की शक्ति चेतन, और सूर्य की तेजी
जड, यह तुमारा हेतु कैसे मिल सकें ? भलाजी!
फल फूलों को तो सूर्य पुष्टि देता है परन्तु सू-
र्य को, फल फूलों को पुष्टि देने की शक्ति कौन
देता है ?

गुरु (हस कर) —ईश्वर देता है

हटी नहीं.

राजा —फेर ?

जमीन्दार —मैने एक गढा खुदवाया

राजा.—फेर ?

जमीन्दार – फिर मैने उसमें दाने डाल दिये, तब वहा चिड़िया चुगने चली गई

राजा.—फेर ?

जमीन्दार —मैंने उस गढे (टोए) के उपर सिरकी डाल कर सब चिड़िया को बन्द कर दिया

राजा —फेर?

जमीन्दार —"उस में केवल इतना छोटा छिद्र रक्खा, कि जिसमें से एक ही चिडिया निकल सके

राजा —फेर ?

जमीन्दार —एक चिड़िया निकल कर उड गई, फर्र !

राजा -फेर ?

का समय पूरा कर देता. एक समय एक जमीन्दार का मकद्दमा आया और जमीन्दार ने आकर कहा कि, मेरी खेती में सें आधी खेती मेरे चचा के पुत्र अर्थात् भाई ने काट ली है.

राजा—फेर?

जमीन्दार—मैंने उसे पकड़ लिया

राजा—फेर?

जमीन्दार—उसने मुझे मारा.

राजा—फेर?

जमीन्दार—मैंने उस को और उस के बेटों को भी मारा

राजा—फेर?

जमीन्दारने देखा कि यह तो फेर ही फेर करता है, मेरे इजहारों का फल कुछ भी नहीं निकालता, तब जमीन्दार बदल कर बोला कि, मेरे खेत को चिड़िया बहुत चुगने लग गई

राजा—फेर?

जमीन्दार—मैंने बहुत उड़ाइ परन्तु

ला कोइ और ही अर्थात् ईश्वर होगा, यथा काष्ठ और लोहा पृथक्२ अर्थात् अलग२ पडा है वह आप ही मिलके तख्त नहीं बन सकता, उनके मिलाने वाला तरखान होगा, इस कारण से

शिष्य —बस, इसी भ्रम से ईश्वर को कर्त्ता मान बैठे हैं ? यदि इसी प्रकार से और भी भ्रम में पड जावें कि जड पदार्थ आप ही नहीं मिलते हैं, इन के मिलाने वाला कोई और ही होना चाहिये, तो फिर यह भी मानना पडेगा कि, यह जो भान्ति२ के बादल होते हैं इनके बनाने वाले भी राज मजदूर होंगे, और सायकाल के समय जो रङ्ग बरङ्ग के बादल हो जाते हैं उनके रङ्गने वाला कोई रजक अर्थात् ललारी भी होगा और जो आकाश में कभी२ इन्द्र धनुष्य पडता है उसके बनाने वाला भी कोई तरखान होगा,

जमीन्दार–एक और निकल गई, फर्र?

राजा --फेर?

जमीन्दार –फर्र!

राजा—फेर?

जमीन्दार –फर्र!

इसी प्रकार से बहुत काल तक राजा और जमीन्दार "फेर" "फर्र" कहते रहे, अन्त में लाचार हो कर, राजा बोला कि, हे जमीन्दार! तेरी "फर्र" कभी समाप्त भी होगी? जमीन्दार ने जबाव दीया की, जब तुम्हारी "फेर" समाप्त होगी तभी मेरी "फर्र" खतम होगी।

शिष्य–यह कई मतानुयायी लोक पूर्वोक्त ईश्वर को किस कारण से कर्त्ता मानते हैं?

गुरू–जम वस्तु स्वय ही (आप ही) नहीं मिलती और विछमती, इनके मिलाने वा-

शिष्य -बस ! इतना ही कहना था परन्तु प्रकृति का भी गुण, कर्म,स्वभाव पूर्वोक्त होता ही है, फिर शंका का क्या काम ? यदि ईश्वर का दिया स्वभाव होवे तो अग्नि को ईश्वर जल का स्वभाव दे देवे और जहर को अमृत का स्वभाव दे देवे, क्यों कि ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है,जो चाहे सो करे. परन्तु ईश्वर कर्त्ता नहीं है, क्यों कि पञ्चम वार स १एए५४ के छपे हुए "सत्यार्थ प्रकाश" अष्टम समुल्लास २२१ पृष्ठ २१, २२, २३, पक्ति में लिखा है कि, जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसे अग्नि, उष्ण, जल, शीत, और पृथिवी आदिक जर्मों को विपरीत गुण वाले इश्वर भी नहीं कर सकता अब तर्क होता है की, वह नियम किस के बाधे हुए थ, जिनको ईश्वर भी विपरीत अर्थात् बदल नहीं सकता ? बस ! सिद्ध हुआ कि, पदार्थ भी अनादि हैं और उनके स्वभाव अर्थात् नियम भी अना-

म्ब (साया) पड़ जाता है तो उसका शीघ्र ही बनाने वाला कोई सिकलीगर भी होगा अपितु नहीं, यह पदार्थों की पर्याय के स्वभाव (*Nature*) होते हैं, इस विषय का स्वरूप हम आगे भी लिखेंगे, परन्तु पूर्वोक्त पदार्थ पर्याय की खबर के न होनेसे पूर्वोक्त भ्रम पड़ता है अब यह समझना चाहिये कि, क्या२ पदार्थ किस२ पर्याय में मिलने बिछड़ने का स्वभाव रखते हैं, यथा चुम्बक पाषाण(मिकनातीस) और लोहे की सूइ दोनों जड़ हैं, परन्तु स्वय (खुद) ही अपने स्वभाव की आकर्षण शक्ति से मिल जाते हैं

गुरु—वह यों कहते हैं कि स्वभाव भी ईश्वर ने ही दिया है

शिष्य—तो सिंहों को (शेरों को) शिकार का और कसाईयों को पशुवध का स्वभाव किसका दिया मानते होंगे

गुरु—कर्मानुसार कहते हैं

शिष्य -बस! इतना ही कहना था परन्तु प्रकृति का भी गुण, कर्म, स्वभाव पूर्वोक्त होता ही है, फिर शंका का क्या काम? यदि ईश्वर का दिया स्वभाव होवे तो अग्नि को ईश्वर जल का स्वभाव दे देवे और जहर को अमृत का स्वभाव दे देवे, क्यों कि ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, जो चाहे सो करे परन्तु ईश्वर कर्त्ता नहीं है, क्यों कि पञ्चम वार स १९५४ के छपे हुए "सत्यार्थ प्रकाश" अष्टम समुल्लास २२१ पृष्ठ २१, २२, २३, पंक्ति में लिखा है कि, जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसे अग्नि, उष्ण, जल, शीत, और पृथिवी आदिक जड़ों को विपरीत गुण वाले ईश्वर भी नहीं कर सकता अब तर्क होता है की, वह नियम किस के बांधे हुए थे, जिनको ईश्वर भी विपरीत अर्थात् बदल नहीं सकता? बस! सिद्ध हुआ कि, पदार्थ भी अनादि हैं और उनके स्वभाव अर्थात् नियम भी अना-

दि हैं, तो फिर ईश्वर किस वस्तु का कर्त्ता हुआ ?

गुरु —ईश्वर बनती ही बना सकता है

शिष्य—बनती का बनाना तो काम अल्पज्ञों का और सामान्य पुरुषों का होता है

आरिया बोल उठा —क्या, ईश्वर अपने आपके नाश करने की शक्ति भी र खता है ?

जैनी —हा, हा ! जब सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् है तो जो चाहे सो करे और जो न चाहे सो न करे

गुरु —अरे भाई ! शायद पुद्गल की पर्याय (स्वभाव) शक्ति को ही ईश्वर कहते हो, जिस पुद्गल पर्याय का स्वरूप हम आगे लिखेंगे परन्तु तुम यह बताओ कि, ईश्वर के कर्त्ता न होने में तुम क्या प्रमाण रखते हो ?

शिष्य —यदि ईश्वर कर्त्ता होता तो ई-

श्वर की मर्जी के बाहर पूर्वोक्त गोवधादिक हिंसा और झूठ चोरी आदिक कभी न होते.

गुरु—यह तो सत्य है, परन्तु वह कहते हैं कि, ईश्वर को कर्त्ता न माने तो ईश्वर बेकार माना जावे.

शिष्य—तो क्या हानि (हर्ज) है? कार तो गर्जमन्द-पराधीन-जिन का निर्वाह न हो वह करते हैं क्या करें? कार करेंगे तो खावेंगे, न करेंगे तो किस तरह से निर्वाह होगा? परन्तु ईश्वर तो अनन्त ज्ञान आदि ऐश्वर्य (दौलत) का धारक है और निष्प्रयोजन (बेपरवाह) है वह कार काहेको करे? बस! ईश्वर इन पूर्वोक्त जीवों के कर्मफल भुगताने में अर्थात् दुःखी करने में कारण रूप होता है, तो पहिले दुःखदायी कर्म करते हुए हटाने में कारण रूप क्यों नहीं होता? ऐसे पूर्वोक्त अशक्त, और अल्पज्ञ, अन्यायी, कुम्हार, माली, तरखान, मजदूर, बाजीगर

आदि की भ्रान्ति अनेक कर्म करनेवाले ईश्वर
को तुम ही मानो, मैं तो नहीं मानता मैं तो
पूर्वोक्त निष्कलंक, निष्प्रयोजन, सच्चिदानन्द,
सर्वानन्द, एकरस ऐसे ईश्वर को मानता हूं

गुरु.—हम तो ईश्वर को कर्त्ता नहीं मानते हैं, परन्तु तेरी बुद्धि में यथार्थ अर्थ दिखाने के लिये उलट पुलट करके कह रहे हैं हम तो ईश्वर को कर्त्ता मानने में ४ दोष प्रथम ही सिद्ध कर चुके हैं

शिष्य —हा,हा, गुरूजी! मैंने भी 'नाममाला,' 'अमर कोष' आदिक कई एक ग्रंथ देखे और पढे भी हैं वहा वीतराग देव,ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों के नाम महिमा सहित चले हैं, परन्तु ऐसा ईश्वर और उसके नाम की महिमा का शब्दार्थ नहीं आया कि,ईश्वर जीवों को पूर्वोक्त कष्ट देनेवाला है

गुरु —नहीं २ हे शिष्य! पूर्वोक्त व्यवस्थाओं का कर्त्ता तो कर्म ही है.

शिष्य.—तो फिर वही पहीले वाली बात "यदि कर्म कर्त्ता है तो जीवों को उपदेश क्यों ?"

गुरु.—तूं तो अब तक भी अर्थ को नहीं समझा

शिष्य.—में नहीं समझा.

गुरु—ले समझ, तेरा यह प्रश्न था कि, (१) "यदि कर्म कर्त्ता हैं तो जीवों को भले बुरे कर्म की रोक टोक क्यों ? और (२) यदि जीव कर्त्ता है तो पूर्वोक्त सुखों के उपाय करते हुए दुःख और मृत्यु आदि का होना क्यों ? अब इसका तात्पर्य्य (भेद)सुन जब यह जीव क्रियमाण अर्थात् नये कर्म करे उनमें तो जीव कर्त्ता है, और फिर वही कर्म किये हुए वासनाओं से खिंचे हुए अन्त करण में सञ्चित पूर्व कर्म हो जाते हैं अर्थात् पिछले किये हुए, तब उनके पूर्वोक्त फल भुगताने में वह कर्म ही कर्त्ता हो जाते हैं. इसका विशेष वर्णन हम आगे करेंगे.

शिष्य—भला, गुरूजी! यह फरमाइये कि, पूर्व कर्मों के अनुसार क्या २ व्यवस्था हैं, और जीवों के अधीन नये कर्म क्या २ हैं?

गुरु—पूर्व कर्मों के अधीन तो वही पूर्वोक्त आयु, अवगहना आदि अर्थात् सुख के उपाय करते हुए दुःख का होना (यथा पुत्र को पाला, पढाया, कुलवृद्धि के लिये विवाहा; परन्तु वह मृत्यु हो गया, रांड रह गई, इत्यादि) और जरा (बुढापा), मृत्यु आदि का होना यह पूर्व कर्मों के अनुसार हैं इस वास्ते इस विषय में शास्त्रकारों का उपदेश भी नहीं है कि, तुम लम्बे क्यों हुए? ठिगने (मधरे) क्यों? काले क्यों? नर क्यों? नारी क्यों? छोटी आयु वाले क्यों हुए? मृत्युवश क्यों हुए? इत्यादि क्यों कि, इस विषय में कर्म ही कर्ता है, अर्थात् यह काम पूर्व कर्मों के अधीन हैं, जीव के अधीन नहीं हैं और जो नये शुभाशुभ कर्म करते हैं, अर्थात् दया, दान, परोप-

कार, आदि का करना, और हिंसा, मिथ्या, ठगी, चोरी, मैथुन, परनारीगमन, ममता, पर-द्रव्यहरण, कपट, निन्दा, मांसभक्षण, म-दिरापानादि का करना इनमें जीव कर्त्ता है अर्थात् यह जीव के अख्तियार हैं यथा किसी पुरुष ने चाहा कि मैं झूठी गवाही दूं अब उसमें उसका अख्तियार है, चाहे देवे, चाहे न दे, क्यों कि यह नया कर्म करना है झूठ बोलना पूर्वकर्म का फल नहीं हैं, परन्तु जब वह झूठी गवाही दे चुका तब उस झूठ बोलने का पाप सञ्चित अर्थात् पूर्व कर्म हो गया अब वह पुरुष चाहे कि मुझ को झुठ के पाप कर्म का फल (अर्थात् इस लोक में तो जुर्माना जेलखाना आदिक, और पर लोक में दुर्गति) न हो, परन्तु अब उसमें जीव का अर्थात् पुरुष का अख्तियार न रहा, कि उस कर्म का फल न भोगे अपितु अवश्य वह कर्म उस फल देगा यथा दृष्टान्त है कि:—

जब तक तीर हाथ में था तब तक उसका अ-
ख्तियार था कि कहींको चला दे, परन्तु जब
छोड़ चुका तो इख्तियार से बाहिर हुआ,नहीं
रख सकेगा, जा ही लगेगा अथवा कोई पुरुष
विष खाने लगे,तो उसे अख्तियार है कि खाये,
वा न खाये,सोच समझ ले परन्तु जब खा चुके
तो बेअख्तियार है, फिर कितना ही वह पुरुष
चाहे कि मुझे इसका फल (दु:ख वा मरण)
न हो, तथापि वह विष (जहर) उसे अव-
श्य ही फल देगा इसी प्रकार से जिस वास-
ना से कर्म करता है उस वासना की आकर्षण
शक्ति द्वारा (खैंच से) परमाणु इकट्ठे हो कर
कर्म रूप एक प्रकार का सूक्ष्म मादा विष की
तरह अन्त करण रूप मेद में संग्रह (इकट्ठा)
हो जाता है उसका सार रूप कर्मफल नि-
मित्तों से परलोक में भोगता है इसका स्व-
रूप हम विस्तार सहित आगे लिखेंगे इसी लिये
शास्त्रकारों का जीवों को उपदेश है की —

हे जीवो ! नये कर्म करने में तुम स्वतंत्र हो, समझ के चलो, खोट्टे कर्म पूर्वोक्त हिंसा, मिथ्या, आदि से हटो, और भले कर्म दया, दान आदि में प्रवृत्त रहो

आरिया -यह तो जो तुमने कहा सो सत्य है, परन्तु हमारा यह प्रश्न है कि, चोर चोरी तो आप ही कर लेता है, परन्तु कैद में तो आप ही नहीं जा धसता, कैद में पहुंचाने वाला भी तो कोई मानना चाहिये ?

जैनी—हां, हा, चोरने जो चोरी का कर्म किया है वास्तव में तो उसके कर्म हीसे कैद होती है, परन्तु व्यवहार में राजा, कोतवाल (थानेदार) सिपाही आदि के निमित्तो से जाता है यदि चोर को स्वय (खुद) ही फासी लग जावे वा स्वत उछल कर कैद में जा पड़े तो समझा जाय कि ईश्वर ने ही चोर को चोरी का फल भुगताया क्यों कि तुम्हारी इस में वास्तव से [असल] तर्क यही होगी

कि, जीव कर्म तो आप ही कर लेता है, परन्तु स्वय (आप) ही कैसे भोगता है ? जैसे सम्बत् १९५४ के छपे हुए "सत्यार्थ प्रकाश" के ४४९ पृष्ठ पक्ति नीचे की १म में लिखा है कि, "कोई जीव खोटे कर्म का फल भोगना नहीं चाहता है, इस लिये अवश्य ही परमात्मा न्यायाधीश होना चाहिये" अब देखिये कि, कर्म का स्वरुप न जानने से यह मन कल्पना कर लीनी, अर्थात् मान लिया कि कर्म फल भुगता ने वाला अवश्य होना चाहिये इस लेख से यह भी सिद्ध हुआ कि, उन्हें भी निश्चय न हुआ होगा कि कर्म भुगता ने के झगडे में पडने वाला भी कोई ईश्वर "है" क्यों कि 'होना चाहिये' यह शब्द सन्देहास्पद अर्थात् शकदार है यों नहीं लिखा है कि, फल भुगताने वाला अवश्य है वस ! वही ठीक है जो जैनी लोग कहते हैं जैसे कि चोर चोरी का फल निमित्तों से भोगता

है ऐसे ही जीव भी स्वतत्रता से कर्म करने में खुद मुखत्यार है (अर्थात् क्रियमाण में) और फिर वही कर्म जिस२ अध्यवसाय से (वासना से) किये हैं उसी वासना में मिल कर कारण रुप सञ्चित होजाते हैं तब वह कर्म ही निमित्तों से कर्मफल भुगताने में स्वतंत्र हो जाते हैं

आरिया —भला जी ! कोसी पुरुष ने कर्म किया कि जमीन पर एक लकीर खेंच दी, अब वह लकीर उसे कर्मफल देगी ?

जैनी —अरे भोले! क्या तुम 'क्रिया' को 'कर्म' मानते हो ? लकीर खेंचना तो एक 'क्रिया' है, और 'कर्म' तो यहा ' क्रियाफल ' को कहा है अर्थात् जिस इच्छा से वह लकीर खेंची है, यथा (जैसे) कीसी पुरुषने कहा कि मेरी तो वात पत्थर की लकीर है, यों कहते हुए ने लकीर खेंच दी, और किसी पुरुषने कहा कि एक वार तो उसकी ग्रीवा (गर्दन)

पर छुरी फेर ही देनी है, ऐसे कहते हुए ने लकीर खेंच दी, अब यह लकीर खेंचने की क्रिया तो दोनों ही की एकसी है,परन्तु इच्छा (इरादे) दोनों के पृथक् २ (न्यारे २) हैं इस इच्छा की आकर्षण शक्ति से एक प्रकार का सूक्ष्म मादा अन्तःकरण रूपी मेद में इकठा हो जाता है, उसको हम "कर्म" कहते हैं, जिसको अन्यमतानुयायी (और मतों वाले) लोग भी 'सञ्चित कर्म' कहते हैं, सञ्चित के अर्थ ही, किसी वस्तु के इकठे करने के हैं

आरिया—कर्म का फल कर्मों के कारण रूप होनेसे ही भोगा जाता है ईश्वर नहीं भुगताता है, यह तुम युक्ति (दलील) से ही कहते हो वा किसी शास्त्रका भी लेख है?

जैनी—तुम लोग तो शास्त्रों को मानते ही नहीं हो तुम तो केवल युक्ति (दलील) को ही मान ते हो यदि शास्त्रों कोमानो तो शास्त्रों

में जैन मत के तथा अन्य [और] मतों के शा-स्त्रों मे भी पूर्वोक्त कथन लिखा है

आरिया—किस प्रकार से ?

जैनी—जैन सूत्र श्री उत्तराध्ययन, २० वें अध्ययन ३७ वीं गाथा में लिखा है—

गाथा

अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाणय सुहाणय अप्पामित्त ममित्त च; दुप्पट्ठिउ सुप्पट्ठिउ ॥ ३७ ॥

अपनी आत्मा अर्थात् जीव ही कर्त्ता है, जीव ही विकर्त्ता विनाश काय अर्थात् कर्मों को भोग के निष्फल करता है, किसको कर्त्ता भोगता है दुष्ट कर्मों का फल दुखों के ताईं और श्रेष्ठ कर्मों का फल सुखों के ताईं आत्मा ही मित्र रूप सुख देने वाली होती है आत्मा ही शत्रु रूप दुःख देने वाली होती है परन्तु किसी दुष्ट सग अथवा दुर्मति के

पर छुरी फेर ही देनी है, ऐसे कहते हुए ने लकीर खेंच दी, अब यह लकीर खेंचने की क्रिया तो दोनों ही की एकसी है,परन्तु इरा (इरादे) दोनों के पृथक् २ (न्यारे २) हैं. इस इच्छा की आकर्षण शक्ति से एक प्रकार का सूक्ष्म मादा अन्तःकरण रूपी मेद में इकठा हो जाता है, उसको हम "कर्म" कहते हैं, जिसको अन्यमतानुयायी (और मतों वाले) लोग भी 'संञ्चित कर्म' कहते हैं, सञ्चित के अर्थ ही, किसी वस्तु के इकठे करने के हैं

आरिया—कर्म का फल कर्मों के कारण रूप होनेसे ही भोगा जाता है ईश्वर नहीं भुगताता है, यह तुम युक्ति (दलील) से ही कहते हो वा किसी शास्त्रका भी लेख है?

जैनी—तुम लोग तो शास्त्रों को मानते ही नहीं हो तुम तो केवल युक्ति (दलील) को ही मान ते हो यदि शास्त्रों को मानो तो शास्त्रों

में जैन मत के तथा अन्य [और] मतों के शा-
स्त्रों में भी पूर्वोक्त कथन लिखा है

आरिया —किस प्रकार से ?

जैनी —जैन सूत्र श्री उत्तराध्ययन,२०
वें अध्ययन ३७ वीं गाथा में लिखा है—

गाथा

अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाणय
सुहाणय अप्पामित्त ममित्त च;
दुप्पट्ठिउ सुप्पट्ठिउ ॥ ३७ ॥

अपनी आत्मा अर्थात् जीव ही कर्त्ता
है, जीव ही विकर्त्ता विनाश काय अर्थात्
कर्मों को भोग के निष्फल करता है, किसको
कर्त्ता भोगता है दुष्ट कर्मों का फल दुखों के
ताई और श्रेष्ठ कर्मों का फल सुखों के ताई
आत्मा ही मित्र रूप सुख देने वाली होती है
आत्मा ही शत्रु रूप दुःख देने वाली होती
है परन्तु किसी दुष्ट सग अथवा दुर्मति के

पर छुरी फेर ही देनी है, ऐसे कहते हुए ने लकीर खैंच दी, अब यह लकीर खेंचने की क्रिया तो दोनों ही की एकसी है,परन्तु इच्छा (इरादे) दोनों के पृथक् २ (न्यारे २) हैं इस इच्छा की आकर्षण शक्ति से एक प्रकार का सूक्ष्म मादा अन्तःकरण रूपी मेद में इकठा हो जाता है, उसको हम "कर्म" कहते हैं, जिसको अन्यमतानुयायी (और मतों वाले) लोग भी 'संश्चित कर्म' कहते हैं, सश्चित के अर्थ ही, किसी वस्तु के इकठे करने के हैं

आरिया —कर्म का फल कर्मों के कारण रूप होनेसे ही भोगा जाता है ईश्वर नहीं भुगताता है, यह तुम युक्ति (दलील) से ही कहते हो वा किसी शास्त्रका भी लेख है?

जैनी —तुम लोग तो शास्त्रों को मानते ही नहीं हो तुम तो केवल युक्ति (दलील) को ही मान ते हो यदि शास्त्रों को मानो तो शास्त्रों

जा लगी मेरे क्या वश की बात है ? अब सोचो कि वह और उस के घर के उस ईंट मारने वाले के शत्रु हो जावें वा नालिश करें, अथवा मुकद्दमें में जेहलखाना होवे, अपितु नहीं ? बस ! यही कहेंगे कि यह प्रारब्धी मामला है, इसकी आख इसके हाथ से फूटनी थी अब देखो ! उस आख फोड़ने का आगे को कुछ भी फल न हुआ, क्यों कि यह विना इरादा, पूर्व कृत सचित कर्म का फल परतंत्रता से भोगा गया हा ! इतना तो अवश्य कहना होगा कि, अरे मूर्ख ! तूने बुद्धि (अक्ल) से ईंट क्यों ना फैंकी ? यदि वह आखो के फोड़ने के इरादे से ईंट मारता तो चाहे आख फूटती न फूटती परन्तु उसका फल आगे को अवश्य ही इस लोक में तो जुर्माना (जेहलखाना) आदिक होता, और परलोक में आख फूटनें आदिक का दुखदायी फल होता

प्रयोग से दुष्ट कर्मों में स्थित हुए २ और सत्संग शुभ मति के प्रयोग से श्रेष्ठ कर्मों में स्थित हुए २ अर्थात् यह जीव नये कर्म करने में स्वतंत्र है, और पश्चात् काल पूर्व जन्मांतर में कर्मों के वश परतंत्र होके भोगता है, अर्थात् जो कर्म योगों से (इरादों से) किया जावे वह नूतन कर्म होता है, उसका फल आगे को होता है और जो कर्म बिना इरादे से आप ही हो जावे वह पुराकृत—सञ्चित कर्म का फल भोगा माना जाता है, उसका फल आगे को नहीं होता यथा किसी एक मनुष्य ने एक ईंट बेमौका पड़ी देख कर अपने घर से बाहर को सहज भाव से फैंक दी, परन्तु वह किसी पुरुष की आंख में जा लगी, उसकी आंख फूट गई तो बड़ा शोर मचा और उसके घर के कहने लगे कि, अरे तैने ईंट मार के ही आंख फोड़ दी, वह कहने लगा कि, नहीं जी! मैने तो बे खयाल फैंकी थी, इसके

भेजा गया, तो माथा ठकोरे कि मेरी प्रारब्ध, तो लोग भी कहेंगे, कि बेशक ! यह पूर्व कर्म का फल है इसने चोरी नहीं की अब उसको पूर्व जन्म के किये हुए सञ्चित कर्मों का, निमित्तों से दुःख भोगवना पड़ा परन्तु उसे आगे को दुर्गति भी भोगनी पड़ेगी, अपि तु नहीं

तथा किसी अच्छे कुल की स्त्री विधवा आदिक ने अनाचार सेवन किया तब लोग निन्दा कर के दुरगञ्छने लगे (फिटलानत देने लगे) तब, वह कहने लगी कि, मेरी प्रारब्ध, तो लोग कहने लगे कि प्रारब्ध बेचारी क्या करे ? जब तुझे स्वतंत्रता से कुकर्म (खोटे कर्म) मंजूर हुए यदि किसी सुशीला स्त्री को किसी दुष्ट ने लाछन लगादिया कि यह व्यभिचारिणी है, तो वह कहती है कि मेरी प्रारब्ध, तो उसका यह कहना सत्य है, क्यों कि उसने कुकर्म नहीं किया-उस-

आरिया—यों तो लोगों में अनेक प्रकार के कार विहार में, चलने, फिरने आदिक में विना इरादे जीव हिंसा आदि हो जाती है तो क्या उसका दोष नहीं होता ?

जैनी—दोष क्यों नहीं? आचार विचार का उपदेश जो शास्त्रो में कहा है,उसका तात्पर्य्य यही है कि अज्ञान अवस्था में (गफलत में) रहना अवश्य ही सर्वदा दोष है

तथा किसी ने स्वतत्र आप ही चोरी करी,फिर वह पकड़ा गया, मुकद्दमा हो कर जेहलखाने का हुक्म हुआ, तव वह चोर अपना माथा ठोरता है कि मेरी प्रारब्ध तो उसे बुद्धिमान् पुरुष यों कहेंगे कि अरे ! प्रारब्ध वेचारी क्या करे ? तैने हाथों से तो चोरी के कर्म किये,अब इनका फल तो चाखना ही पड़ेगा यदि कोई शाहूकार भला पुरुष है और उसको अचानक ही चोरी का कलक लग गया, और मुकद्दमा होने पर जेहलखाने में

परोददातीति कुबुद्धि रेषा ।
पुराकृतं कर्म तदेव भुज्यते,
शरीर कार्यं खलुयत्त्वया कृतम् ॥५॥

अथ.—"सुख का और दु ख का नहीं है कोई दाता (देनेवाला), और कोई ईश्वरादिक, वा पुत्र, पिता, शत्रु मित्र का दिया हुआ सुख दु ख भोगता हूं, इति (ऐसे) जो माने उसकी एतादृशी कुबुद्धि (कुत्सितबुद्धि) है तो फिर किसका दिया सुख दु ख भोगता है? पुराकृतम् अर्थात् पहिले किये हुए जो सञ्चित कर्म हैं, 'तदेव भुज्यते' अर्थात् तिसीका दिया हुआ सुख दु ख भोगता है 'शरीर कार्यम्' अर्थात् सूक्ष्म शरीर अन्त करण रूप स्थूल शरीर के निमित्त से अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा भोगता है 'खलु इति निश्चयेन (त्वया) तेरे करके (कृतम्) किये हुए हैं

और ऐसे ही यूनानी हिक्मत की किताब में भी लिखा हुआ है, (अरब्बी में) –

के पूर्व कर्म के उदय से निन्दा हुई परन्तु उस निन्दा के होने से क्या वह दुर्गति (खोटी गती) मे जायगी ? अपि तु नहीं

हे भव्य जीवो ! इस प्रकार से प्राणी स्वतत्रता से नये कर्म करता है, और परतत्रता से पुराने कर्म भोगता है, और इसी प्रकार सासारिक राजाओं के भी दण्ड देने के कानून है कि जो इरादे से खून आदि कसूर करता है उसे अख्तियारी नया कर्म किया जान के दण्ड देते हैं और जो बिना इरादे कसूर हो जाय तो उसे वे अख्तियारी अमर जान कर छोड़ देते हैं इस रीति से पूर्वोक्त कर्म, कर्म का फल भुगताते हैं

और ऐसे ही चाणक्य जी अपनी बनाई हुई लघुचाणक्य राज नीति के आठ वें अध्याय के ५वें श्लोक में लिखते हैं –

श्लोक

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता,

लिखा है कि यह कृत कर्म (किये हुए कर्म) अन्त करण रूपी निधान में जमा रहते हैं, और वही फल भुगताने में मति को प्रेरणा करते हैं. यथा—

श्लोक

यथा यथा पूर्व कृतस्य कर्मणः
फलं निधानस्थमिवोपतिष्ठते;
तथा तथा तत्प्रति पादनोद्यता,
प्रदीप हस्तेव मति प्रवर्त्तते ॥१६॥

यथा 'कृष्ण गीता' अध्याय ५वें श्लोक १४ वें में लिखा है—

श्लोक

नकर्तृत्वं नकर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
नकर्मफलसयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्त ते ।१४।

हे अर्जुन ! प्रभु देहादिकों के कर्तृत्व को नहीं उत्पन्न करे है, तथा कर्मो को भी नहीं

'ऐसा लि मुजरक बजात मुतसर्रे फबा इख्तात" इसका अर्थ ये है.—चेतन दर्याफत करने वा-ला है अपने आपसे, कबजा रखने वाला है साथ औजारों के यह भी पूर्वोक्त अर्थ के साथ ही मिलता है

ऐसे ही 'मनुस्मृति,अध्याय ८वें और श्लोक ८४ मे लिखा है कि, आत्मा अपना साक्षी (गवाह) और आश्रय भी आप ही है

श्लोक

आत्मैवात्मन साक्षी गतिरात्मा तथात्मन ।
मावमंस्था स्वमात्मान नृणा साक्षिण मुत्तमम् ।

अर्थ टीका —यस्माच्छु भा शुभ कर्म प्रतिष्ठा आत्मैवात्मन शरण, तस्मादेव स्व-मात्मान नराणा मध्यमा उत्तम साक्षिण मृषा भि ज्ञाने नावज्ञासि

और ऐसे ही 'लोकतत्व निर्णय' ग्रथ मे

विधि कि वन्दना करने से क्या होगा ? हम उन्हीं कर्मों को नमस्कार करते हैं कि जिन पर विधाता का भी प्रभवत्व अर्थात् जोर नहीं है

और कई लोग दु:ख दर्द में ऐसे कह देते है कि, 'मर्जी ईश्वर की' । सो यह भी एक पर्यायवाची कर्म ही का नाम है, यथा ' नाम माला ' तथा ' लोक तत्व निर्णय "—

श्लोक

विधिर्विधान नियतिः स्वभावः ।
कालो ग्रहा ईश्वर कर्म देवम् ॥
भाग्यानि कर्माणि, यम कृतात ।
पर्याय, नामानि पुराकृतस्य ॥

अर्थ—१ विधिः (विधना) २ विधाता,विधान, ३ नियति (होनहार) ४ स्वभाव, ५ काल, ६ ग्रह, ७ ईश्वर, ८ कर्म ९ देव, १० भाग, ११ पुण्य, १२ यम, १३ कृतान्त, यह

उत्पन्न करे है तथा कर्मों के फल के संबंध को भी नहीं उत्पन्न करे है, किन्तु अज्ञान रूप मोह ही कार्य के करने विषे प्रवृत्त होवे है.

यथा 'शान्ति शतके, श्री सिल्हन कवि संकलित आदि काव्येः—

श्लोक

नमस्यामो देवान् ननु हन्त विधेस्तेऽपि वशगा-
विधिर्वंद्य सोऽपि प्रतिनियत कर्मैकफलद् ।
फलं कर्मायत्तं किम मरगणै किञ्चविधिना
नमस्तत्कर्मेभ्यो विधिरपि न येभ्य प्रभवति॥१

इसका अर्थ यह है कि, ग्रंथकर्त्ता ग्रंथ के आदि में मंगलाचरण के लिये देव को नमस्कार करता है फिर कहता है की, वह देवगण भी तो विधि ही के वश है तो विधि ही की वन्दना करें फिर कहता है कि विधि भी कर्मानुसार वर्ते है तो फिर देवों को नमस्कार करने से क्या सिद्ध होगा? और

जैनी-जड़ तो जड़वाले सब ही काम कर सकता है, क्यो कि जड़ भी तो कुच्छ पदार्थ ही होता है जब पदार्थ है तो उसमें उसकी स्वभाव रूप शक्ति भी होगी, अर्थात् अग्नि में जलाने की और विष (जहर) में मारने की, जल में गलाने की, मिकनातीस चमकपत्थर में सूई खैंचने की, मदिरा (शराब) में बेहोश करने की, इत्यादिक यथा- दृष्टान्त -शराब की बोतल ताक में धरी है, अब वह शराब अपने आप किसी पुरुष को भी नशा नहीं दे सकती क्यों कि वह जड़ है-परतंत्र है फिर उसी बोतल को उठा कर किसी पुरुष ने अपनी स्वतंत्रता से पी लिया, क्यों कि वह पुरुष चेतन है-शराब के पीने में स्वतत्र है, चाहे थोड़ी पीये, चाहे बहुती पीये, चाहे नाहीं पीये परन्तु जब पी चुका तब वह शराब अपना फल देने को (बेहोश करने को) स्वतत्र हो गई और वह पीने वाला शराब-

सब पुराकृत कर्म ही के पर्याय वाचक नाम हैं. इत्यादि बहुत स्थान शास्त्रों में कर्मफल कर्मों के निमित्त से ही भोगना लिखा है. ईश्वर नहीं भुगताता है, निष्प्रयोजन होने से, परन्तु पक्ष के जोर से, पूर्व धारणा के अनुकूल मति अर्थ को खेंचती है, यथा १९५४ के छपे हुए सत्यार्थ प्रकाश के ७वें समुल्लास २३०पृष्ठ पङ्क्ति १२वी१३में लिखा है-"ईश्वर स्वतंत्र पुरुष को कर्म का फल नहीं दे सकता, किन्तु जैसा कर्म जीव करता है वैसा ही फल ईश्वर देता है" इति अब देखिये! पूर्वोक्त कारण, न तो ऐसा लिखना चाहिये था कि जैसा कर्म जीव करता है वैसा ही फल होता है

आरिया—अजी! आपने प्रमाण (हवाले) दिये सो तो यथार्थ हैं; परन्तु हम लोगों को यह शंका है कि कर्म तो जड़ है, यह फलदायक कैसे हो सकते हैं? अर्थात् जड़ क्या कर सकता है?

वह जड ही अपने खेल खिलाती है ऐसे ही जीव भी स्वतत्रता से कर्म करता है फिर वही कर्म पूर्वोक्त अन्त करण में सञ्चित हो कर (जमा हो कर) इस लोक अथवा परलोक में अन्त करण की प्रकृतियों को बदलने की शक्ति रखते हैं और उन प्रकृतियों के बदलने से अन्त करण मे अनेक शुभ--अशुभ, संकल्प उत्पन्न (पैदा) होते हैं यथा भर्तृहरि 'नीति-शतक' —

श्लोक

कर्मायत्त फलं पुसा, बुद्धि कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधिया भाव्य, सुविचार्य च कुर्वता ॥

उन संकल्पों के वश हो कर जीव अनेक प्रकार की हिंसा, मिथ्या आदि क्रिया करता है, फिर राजदण्ड, लोकभण्ड, हर्ष-शोक आदि के निमित्तों से भोगता है

आर्य्या —भगवाजी ! परलोक में कर्म कैसे जाते हैं ? क्यों कि जिस शरीर से कर्म

के वश-परतंत्र हो गया क्यो कि वह नहीं चाहता है कि मेरे मुख से दुर्गन्धि आवे, आंखों में लाली आवे, और ऐरगैर वात मुख से निकले, घुमेर आकर जमीन पर गिर पडूं, परन्तु वह शराव तो अपना फल (जौहर) दिखावेगी ही, अर्थात् दुर्गन्धि भी आवेगी, आंखे भी लाल होगी, और ऐरगैर वातें भी मुख से निकलेंगी, घुमेर आकर मोरी में भी पडेगा, और शिर भी फूटेगा, मुख में कुत्ते भी मूत्र करेंगे अव कहो वेदानुयायी पुरुषो ! यह कर्त्तव्य जड़ के हैं अथवा चेतन के ? वा ऐसे है कि जव पुरुप ने शराव पी तव तो पुरुष को स्वतंत्र जान के ईश्वर उसके लिहाज से चुप हो रहा, फिर पीनेके अनन्तर (वाद) फल देने को अर्थात् पूर्वोक्त वेहोशी करने को ईश्वर तैयार हो गया ? क्यों कि शराव तो जड थी वस ! यों नहीं वही शराव पुरुप की स्वतंत्रता मे ग्रहण की हुई भेद मे मिल कर

ो आयु कर्म के अन्त में यहा ही रह
है, परन्तु सूक्ष्म देह (अन्त करण)
लोक में भी जीव के संग ही जाती है.
अन्त करण के शुभ-अशुभ होने से जी-
शुभ अशुभ योनि में खैंच हो जाती
से दृष्टान्त है कि, चमक पत्थर तो यहा
मुनासिब अन्दाजा के अनुकूल फास-
सूई वहा परन्तु खैंच हो कर मिल जाते
यों कि वह पत्थर भी जड़ है और सूई
ी है, परन्तु उस जड़ की उस अव-
ता खैंच का और मिलने का स्वभाव है,
कि ई तीसरा ईश्वर वा भूत उन्हे नहीं
है ऐसे ही जीव का अन्त करण
है, और जिस योनि में जा कर पैदा
ाले कर्म हैं, उस योनि की धातु भी
ति, परन्तु उनकी शुभ अशुभ अवस्था
आकी होनेसे पूर्वोक्त खैंच हो कर पैदा
भाव होता है-चाहे लाखों कोस

किये हैं वह शरीर तो यहां ही रह
तो फिर ईश्वर के विना उन कर्मों को
याद करवाता है? जिस करके, वह
गे जावें

जैनी—क्या, तेरा ईश्वर जीवों
याद कराने के वास्ते कर्मों का दफ्तर
रखता है? यदि ईश्वर एक २ जीव
याद कराने लगे तो ईश्वर को
न्त काल तक भी वारी न आवेगी
जीवोंको अपने किये कर्म का भुगतान
न्त काल तक भी न होगा, क्यों कि
में जीवों की अनन्तता है

आरिया—तो फिर कैसे कर्म
जाय?

जैन—अरे भोले भाई! हाव तो
ऊपर लिख आये हैं, कि स्वरूप की
अन्त करण मे जमा सो इस जी मिल कर

र तो आयु कर्म के अन्त में यहा ही रह
ती है, परन्तु सूक्ष्म देह (अन्त करण)
परलोक में भी जीव के संग ही जाती है.
स अन्त करण के शुभ-अशुभ होने से जी-
की शुभ अशुभ योनि में खैंच हो जाती
. जैसे दृष्टान्त है कि, चमक पत्थर तो यहां
और मुनासिब अन्दाजा के अनुकूल फास-
से सूई वहा परन्तु खैंच हो कर मिल जाते
, क्यों कि वह पत्थर भी जड़ है और सूई
भी जड़ है, परन्तु उस जड़ की उस अव-
स्था में खैंच का और मिलने का स्वभाव है,
और कोई तीसरा ईश्वर वा भूत उन्हे नहीं
मिलाता है ऐसे ही जीव का अन्त करण
अकात्मक है, और जिस योनि में जा कर पैदा
है, पिछले कर्म हैं, उस योनि की धातु भी
दि के तिपरन्तु उनकी शुभ अशुभ अवस्था
आली होनेसे पूर्वोक्त खैंच हो कर पैदा
कैसे जाते भाव होना है-चाहे लाखों कोस

क्यों न हो यथा वर्तमान काल में जैपुर आ-
दिक बड़े २ नगरों में एक किस्म के मसाले-
की बत्तीयें वाली लाल टेनें लग रहीं है और
नगर के बाहर उसी प्रकार के (मुकाबले के)
मसाले के बम्बो में से कला के जोर धूंआ
निकल हरेक स्थान नगर में विस्तर होता है
परंतु उस मसाले की लाग के प्रयोग लाल
टेन की बती को ही प्रकाश देता है और को नही
ऐसे ही पूर्वोक्त अत करण में कर्म रूप मसा-
ला और योनी की धातु की यथा प्रकार होने
से उत्पत्ति होती है और उसी अन्तकरण को
जैन में तेजस कारमाण सूक्ष्म शरीर कहते हैं
तो उस तेजस कारमाण के प्रयोग से माता-
पिता के रज, वीर्य अथवा पृथिवी और जल
के सयोग से शीत-उष्ण के मुनासिब होने के
निमित्तों से स्थूल देह जाति रूप वाला बन
जाता है, जैसे मनुष्य से मनुष्य, पशु से पशु,
घोड़े से घोड़ा, बैल से बैल, अथवा गेहूं से गे-

हुं, चणे से चणे, इत्यादि. और कई एक मूर्ख लोग ऐसे कहते हैं कि, कर्म (प्रकृति) से देह बनता है तो आख के स्थान कान, और कान की जगह हाथ आदिक प्रकृतियें क्यों नहीं लगा देती हैं? उत्तर-अरे नोले! प्रकृति तो जरु है यह तो बेचारी आख की जगह कान क्या लगा देगी ? परन्तु तुम्हारा ईश्वर तो परम चेतन कर्त्तमकर्त्ता है, वह क्यों नहीं कान की जगह बाहु लटका देता, और किसी के दो आखें और पीछे को लगा देता? जिस से मनुष्य को विशेष (बहुत) लान्न पहुंचता; कि आगे को तो देख कर चलता और पीछे को न्नी देखता रहता कि कोई सर्प आदिक अथवा शत्रु आदिक पीछन करता हो, और लोग न्नी महिमा करते कि धन्य है ईश्वर की लीला किसी के दो आखे और किसी के तीन वा चार लगा दी हैं परन्तु तुम्हारा ईश्वर तो चेतन हो कर न्नी ऐसे नहीं करता है.

तर्क —अरे मूढ ! ऐसे करे कैसे ? ईश्वर तो कर्त्ता ही नहीं है यह तो अनादी भाव है जाति से जाति, अर्थात् जैसी योनि में जाने के कर्म जीव से बने होवें, वैसी ही योनि में उत्पन्न हो कर उसी योनि वाले रूप में होता है हां ! जीव की कोई योनि, जाति नहीं है इस से पूर्वोक्त कर्मानुसार कभी नर्क योनि में, कभी पशु वा मनुष्य वा देवयोनियें में परिभ्रमण करता चला आता है

आरिया —क्यों जी ! पहिले जीव है कि कर्म हैं ?

जैनी—यह प्रश्न तो उनसे करो जो जीव और कर्म की आदि मानते हों वही बतावेंगे कि प्रथम जीव है वा कर्म जैन में तो जीव और कर्म अनादि समवाय सम्बधी माने हैं, तो आदि (पहिले) किसको कहें ? क्यो कि पहिले हुए तो आदि हुआ

आरिया —तो फिर तुम्हारे कथनानुसार जीव की कर्मों से मोक्ष न होनी चाहिये, क्यों कि जिसकी आदि ही नहीं है उसका अन्त भी नहीं है तो फिर तुम्हारे तप-संयम का क्या फल होगा,

जैनीः—अरे! यह तो तर्क हमारी ही तर्फ से सम्भव है, क्यों कि तुम तो मोक्ष में भी कर्म मानते हो उन कर्मों से फिर वापिस आकर जन्म होना मानते हो परन्तु तुमको पदार्थ के सपूर्ण भेदों की खबर नहीं है सुने सुनाये कहीं २ से कोइ २ अग जान लिया, 'मेरे बैंगन तेरी गठ!' बस एक सुन लिया अनादि, अनन्त, जिस की आदि नहीं उसका अन्त भी नहीं, परन्तु सूत्र में पदार्थ के चार भेद कहे हैं–प्रथम अनादि-अनन्त, (२) अनादि सान्त, (३) सादि-सान्त, और (४) सादि-अनन्त

आरिया –इनका अर्थ भी कृपापूर्वक बता

दीजिये, जो हमारी बुध्दि (समझ) में आ जाय.

जैनी —तुम समझो तो बहुत अच्छा है समझाने ही के लिये तो परिश्रम किया गया है—न तुटकों के वास्ते, क्यों कि हम निर्ग्रंथि साधु धर्म में हैं,हमारे मूलसयम यह हैं कि कोड़ी पैसा आदिक धातु को न रखना, बल्कि स्पर्श मात्र भी न करना;और पूर्ण ब्रह्मचर्य्य अर्थात् सर्वदा (हमेशा) यतिपन में रहना, सो परोपकार के लिये ही लिखा जाता है, केवल (सिर्फ) मान बड़ाई के ही लिये नहीं है अब सुनीये! (१) अनादि-अनन्त, तादात्मिक सम्बध को कहते हैं, (२) अनादि-सान्त, समवाय सम्बंध के कहते हैं, (३) सादि-सान्त, संयोग सम्बध को कहते हैं,(४)सादि-अनन्त, अबन्ध को कहते हैं इसका अर्थ यह है:—

(१)'तादात्मिक सम्बध' वह होता है कि चेतन में चेतनता,जड में जड़ता,अर्थात् चेतन पहिले भी चेतन था, अब भी चेतन है, आगे को

भी चेतन ही रहेगा, चेतन तो कभी जड नहीं होगा और जड़ कभी चेतन नहीं होगा; यथा दृष्टान्त:-लाख में लाली और हीरे में सफेदी, इत्यादि पदार्थ की असलीयत को 'तादात्मिक सम्बन्ध' कहते हैं.

(२) 'समवाय सम्बंध' उसे कहते हैं की जो वस्तु तो दो होवें और स्वत स्वभाव सेही अनादि मिली मिलाई होवे;यथा जीव और कर्म.जीव तो चेतन और कर्मो का कारण रूप अन्त:करण अर्थात् सूक्ष्म शरीर जड़, यह पदार्थ तो दो हैं, परन्तु अनादि शॉमिल हैं जीव का अन्त:करण (सूक्ष्म शरीर) अनादि समवाय सम्बंध ही है, और जो जो कर्म करता है सो निमित्तों से करता है, अर्थात् सुरत इन्द्रिय आदि कों से फिर वह निमित्तिक कर्मों का फल निमित्तों से भोगता है. ऐसा ही यह सिलसिला चला आता है सो जो यह जीव अनादि-सान्त कर्म वाले हैं, उनमें से देशकाल शुद्ध मिलने पर

धर्मपरायण होने से कर्म रहित हो जाते हैं, अर्थात् सर्व आरंभ के त्यागी हो कर नये कर्म नहीं करते हैं, तब पूर्वोक्त अन्त करण (सुक्ष्म शरीर) फट जाता है, और निर्मल चेतन कर्म से मुश्वित (मुक्त) होकर अर्थात् बधसे अवंध हो कर पूर्वोक्त मोक्ष पद को प्राप्त हो जाता है यथाः—

श्लोक

चेतनोऽध्यवसायेन कर्मणा च सवध्यते ।
ततो भवस्तय भवेत्तदभावात्पर पदम् ॥

चेतन (आत्मा) अध्यवसाय (वासना) से कर्म से बंधायवान् होता है, तिससे तिसको संसार अर्थात् जन्म-मरण प्राप्त होता है, और जिसके संसार अर्थात् जन्म मरण का अभाव हो जाता है वह जीवात्मा परमपद (मुक्ति) को प्राप्त हो जाता है

यथा दृष्टान्त है कि-फुल मे सुगधि

र तिलों में तेल, दूध में घी, धातु में कुधातु, इत्यादि स्वत ही मिले मिलाये होते हैं, किसी तीसेर के मिलाये हुए नहीं हैं परन्तु किसी समय यंत्र (कोल्हू) के, और बिलौनी के, और ऐहरन के प्रयोग से अलग२ हो जाते हैं

(३) 'सयोग संबध' उसे कहते हैं जो दो वस्तु अलग२ होवें और एक तीसरे मिलाने वाले के प्रयोग से मिलें, फिर समय पाकर बिछड़ जावें, क्यों कि जिस के मिलने की आदि होगी वह अवश्य ही बिछड़ेगा, यथा दृष्टान्त है कि, तख्ते और लोहे (कील) से तख्त, वस्त्र, और रग से रंगील, इत्यादि तीसरे के सयोग मिलाने से मिलते हैं; अर्थात् तरखान के और ललारी के और दूसरा सयोग सम्बध तीसरे के विना मिलाये भी होता है जैसे परमाणु रूखे चिकने की पर्याय यथा प्रमाण मिलने का स्वभाव होता है.दृष्टान्त-

संध्या, राग, बादल, इन्द्र धनुष, आदिक मिलने-बिछने का.

(४) 'अबंध' उसे कहते हैं, जो अनादि जड़ रूप अन्तःकरण, जिसके लक्षण अज्ञान मोहादि कर्म उनके बंधन से चेतन का छुटकारा हो जाना, अर्थात् मोक्ष हो कर परमेश्वर रूप हो जाना, अर्थात् अजर, अमर, कृत-कृत्य (सकलकार्यसिद्ध), सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वानन्द पद में प्राप्त होना, पुनरपि (फिर) कर्मों के बंधन में न पड़ना, अर्थात् जन्म—मरण रूप आवागमन से रहित हो जाना, जिसको जैन में 'अप्पुणरावती' पद कहते हैं, और 'वैष्णव गीता' अध्याय ५ वें श्लोक १७ वें में लिखते हैं

श्लोक

गच्छन्त्य पुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषा ॥

इसका अर्थ यह है –'गच्छन्ति' जाते हैं जीव वहा यहा से, 'अपुनरावृत्तिं' फिर नहीं आवें

संसार में, 'ज्ञान' ज्ञान रूप हो जाता है. 'निर्धूतकल्मषा' झाडके अनादि कल्मष (कर्मदोष)—इत्यादि

अब समझने की बात है कि वह कर्मदोष, राग द्वेष, मोहादि झाडे, तो वह कर्म कुछ जड़ पदार्थ होगा तब ही झाडा गया, न तु क्या झाडता? सो इस प्रकार से अबधपद को सादि-अनन्त कहते हैं, अर्थात् जिस दिन चेतन कर्मबंध से मुक्त हुआ वह उसकी आदि है और फिर कभी कर्मबधन में न आना, इस लिये अनन्त है और जैन सूत्र भगवतीजी—प्रज्ञापनजी में पदार्थों के चार भेद इस प्रकार से भी कहे हैं

गाथा

(१) अणाइआ अपज्जवसीया, (२) अणाइआ सपज्जवसीया(३)साइआ अपज्जवसीया, (४) साइआ सपज्जवसीया इसका अर्थ पूर्वोक्त ही समझना.

संध्या, राग, बादल, इन्द्र धनुष, आदिक मिलने-बिछने का

(४) 'अबध' उसे कहते हैं, जो अनादि जरू रूप अन्तःकरण, जिसके लक्षण अज्ञान मोहादि कर्म उनके बंधन से चेतन का छुटकारा हो जाना, अर्थात् मोक्ष हो कर परमेश्वर रूप हो जाना, अर्थात् अजर, अमर, कृतकृत्य (सकलकार्यसिद्ध), सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वानन्द पद में प्राप्त होना, पुनरपि (फिर) कर्मों के बंधन में न पड़ना, अर्थात् जन्म—मरण रूप आवागमन से रहित हो जाना, जिसको जैन में 'अप्पुणरावत्ती' पद कहते हैं, और 'वैष्णव गीता' अध्याय ५ वें श्लोक १७ वें में लिखते हैं

श्लोक

गच्छन्त्य पुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषा ॥

इसका अर्थ यह है—'गच्छन्ति' जाते हैं जीव वहां यहा से, 'अपुनरावृत्तिं' फिर नहीं आवें

श्लोक

बुद्धि बोध्यानि शास्त्राणि न बुद्धि शास्त्रबोधिका ।
अत्यच्छेऽपि कृते दीपे चक्षुर्हीनो न पश्यति ॥

इसका अर्थ सुगम ही है असली तात्पर्य तो यह है कि पदार्थ ज्ञान हुए बिना कर्त्ता-विकर्त्ता के विषय का भ्रम दूर होना बहुत कठिन (मुशकिल) है

आरिया —अजी! पदार्थ ज्ञान किसे कहते हैं?

जैनी —जैन शास्त्रों में दो ही पदार्थ माने गये हैं, चेतन और दूसरा जड़. सो चेतन के मूल दो भेद हैं (१) प्रकट चेतना कर्म रहित सिद्ध स्वरूप परमेश्वर, (२) अनंत जीव सासारिक कर्म बंध सहित

दूसरे जड़ के भी मूल दो भेद हैं (१) अरूपी जड़ (आकाश, काल आदिक), (२) रूपी जड़, जो पदार्थ दृष्टि गोचर (देखने में) आते

अब जो दूसरा अनादि-शान्त समवाय सम्बंध कहा था सो जीव और कर्म के विषय में जान लेना, क्यों कि तुम्हारा प्रश्न यह था कि कर्मों की आदि नहीं है तो अन्त कैसे होवे? इसका उत्तर इस दूसरे सम्बधके अर्थ से खूब समझ लेना और इन पूर्वोक्त अधिकारों के विषय में सूत्र, प्रमाण, युक्ति-प्रमाण बहुत कुछ लिख सकते हैं और लिखने की आवश्यकता (जरूरत) भी है, परन्तु यहां विशेष परिश्रम करने को सार्थक (फायदेमन्द) नहीं समझ गया, क्यों कि पण्डित जन बुद्धिमान् निरपक्ष दृष्टि से बाचेंगे तो इतने में ही बहुत समझ लेंगे, और जो न समझेंगे वा पक्ष रूपी वृक्ष को ही सींचेंगे तो चाहे कितने ही लिख२ कागज काले कर२ पोथे भरो, क्या फल होगा? यथा 'राजनीति' मे कहा है —

नता है; फिर उस मल की मिट्टी हो जाती है, फिर उस मीट्टी के प्रयोग से खरबूजे आदिक फल हो जाते हैं; फलों को खा कर फिर विष्ठा, फिर मिट्टी, फिर फल इत्यादि शुभ अशुभ पर्याय पलटने का स्वभाव होता है और पुद्गल के मूल धातु चार हैं – १ वर्णमय, २ गधमय, ३ रसमय, ४ स्पर्शमय. इन चारों धातुओं के मिलने से पुद्गल की चार प्रकार की पर्याय में से पर्याय पलटती हैं:—१ गुरु, २ लघु, ३ गुरुलघु, ४ अगुरुलघु. जब गुरुपर्याय को पुद्गल प्राप्त होता है तब किस रूप में होता है? यथा पत्थर धातु आदिक, अर्थात् धातु की और पत्थर की गोली बजन में ५ रत्ती की भी होगी, उस को दरिया के जल पर धर देवें तो वह अपनी गुरु अर्थात् भारी पर्याय के कारण से जल में डूब कर तले में जा बैठेगी और दूसरा लघु पर्याय वाला पुद्गल, काष्ठ आदिक,

हैं, इन सब पदार्थों का उपादान कारण 'पर-
माणु' हैं. अनंत सूक्ष्म परमाणुओं का एक
बादर स्थूल परमाणु होता है,जिसको 'पुद्ग-
ल' कहते हैं- सो इन पुद्गलों का स्वभाव
सूक्ष्म, स्थूल, शुभ,अशुभपन को द्रव्य-क्षेत्र-
काल-भाव के निमित्तों से परिणम जाने का
अर्थात् बदल जाने का होता है, अर्थात् द्र-
व्य तो पृथिवी, जल आदिक, क्षेत्र (जगह);
और काल, ऋतु (मोसम), भाव, गेहू से
गेहूं और चणे से चणे और तृण आदि का
उत्पन्न होना, और उनमें एकेन्द्रियपन वनस्प-
ति योनि वाले जीव और जीव के कर्म इत्यादि
से यथा पृथिवी और जल के सयोग से घास
उत्पन्न होता है, घास को गौने खाया, उस गौ
की मेद की कलों से घास का दूध बनता है,
दूध को मनुष्य ने मिशरी नाख कर पीया, तब
मनुष्य के मेद की कलों से उस दूध से सात
धातु बनते हैं, और विष्ठा (मलमूत्र) भी ब

नता है; फिर उस मल की मिट्टी हो जाती है, फिर उस मीट्टी के प्रयोग से खरबूजे आदिक फल हो जाते हैं; फलों को खा कर फिर विष्ठा, फिर मिट्टी, फिर फल इत्यादि शुभ अशुभ पर्याय पलटने का स्वभाव होता है. और पुद्गल के मूल धातु चार हैं — १ वर्णमय, २ गधमय, ३ रसमय, ४ स्पर्शमय. इन चारों धातुओं के मिलने से पुद्गल की चार प्रकार की पर्याय में से पर्याय पलटती हैं:—१ गुरु, २ लघु, ३ गुरुलघु, ४ अगुरुलघु. जब गुरुपर्याय को पुद्गल प्राप्त होता है तब किस रूप में होता है? यथा पत्थर धातु आदिक, अर्थात् धातु की और पत्थर की गोली बजन में ५ रत्ती की भी होगी, उस को दरिया के जल पर धर देवें तो वह अपनी गुरु अर्थात् भारी पर्याय के कारण से जल में डूब कर तले में जा बैठेगी और दूसरा लघु पर्याय वाला पुद्गल, काष्ठ आदिक,

अर्थात् तोल में पचीस मन का काठ का पोरा होगा, वह भी लघु अर्थात् हलू की पर्य्याय के कारण से जल पर तैरता ही रहेगा अब सोच कर देखो कि कहा तो ५ रत्ती भर वो-झ, और कहा ७५ मन ? परन्तु पर्याय का स्वभाव ही है

आरिया —अजी ! स्वभाव भी तो ईश्वर ने ही वनाये हैं !

जैनी —अरे भोले ! तू इतने पर भी न समझा यदि ईश्वर का वनाया स्वभाव होता तो कभी न पलटता परन्तु हम देखते हैं कि उस ५ रत्ती भर धातु की मनुष्य चौसी कटोरी वना कर जल पर रख देवे तो तैरने लगे, और काष्ठ को फूक कर भस्म (राख) को जल में घोल देवें तो नीचे ही जा लगेगी अब क्या ईश्वर का किया हुआ स्वभाव मनु-ष्य ने तोड़ दिया ? अपि तु नहीं, यह तो क्रिया विशेष करने से भी मिशरी के कूजा के

रवों की भ्रान्ति पर्याय पलट जाती है यथा दूध से दहीं इत्यादि

(३) गुरु-लघु सो वायु (पवन) आदिक (४) अगुरु—लघु सो परमाणु आदिक संख्यात आकाश परदेशोवगाह सूक्ष्म खंध इत्यादि और यह भी समझना आवश्यक (जरूरी) है कि जिसका नाम परमाणु अर्थात् परे से परे छोटा, जिसके दो भाग न हो सकें ऐसे अनन्त परमाणु मिल कर एक स्थूल पदार्थ दृष्टिगोचर (नजर में आनेवाला) बनता है यथा दृष्टान्त —६ मासे भर सुरमे की डली जिसको मनुष्य ने खरल में डाल कर मूसल का प्रहार किया, [चोट लगाई] तो उसके कई एक खण्ड (टुकड़े) हो गये ऐसे ही मुसल लगते२ जब बहुत छोटे टुकड़े हो गए और मूसल की चोट में न आये तो रगड़ना शुरूकिया, तीन दिन तक रगड़ा अब कहोजी! कितने खण्ड(टुकड़े)हुए? परन्तु जितने वह टु-

कम्हे हो गये हैं उनमें से भी एक२ टुकडे के कइ२ टुकम्हे हो सकते हैं क्यों कि उसी सुरमे को यदि तीन दिन तक और पीसें तो बारीक होवे वा नहीं होवे? तो बारीक जब ही होगा जब एक के कई टुकम्हे हों, ऐसे ही २१ दिन तक रगम्हे, तो कैसा बारीक हुआ? उसमें जरा अङ्गुली लगा कर देखें तो कितना सुरमा अर्थात् कितने खण्ड (टुकडे) अङ्गुली को लगें? किरोम्हो, अब एक टुकम्हे को अलग करना चाहें तो किया जावे, कर तो लिया जावे; परन्तु ऐसा बारीक औजार नहीं है, और वह खंम्ह वा टुकम्हा भी अनन्त परमाणुओं का समूह (पिंम्ह) होता है क्यों कि वह दृष्टि में आ सकता है, और उन परमाणुओं में वर्ण, गध, रस, स्पर्श, भी है, मिलने–विछुम्हने का स्वभाव भी है क्यों कि नये-पुराणे होने की पर्याय भी पलटती रहती है, और इन परमाणु आदि पदार्थों का अधिक स्वरूप देख-

ा होवे तो श्रीमद्भगवतीजी-प्रज्ञापनजी आ-
दिक सूत्रों मे गुरु आम्नाय से सुन कर औ-
र सीख कर प्रतीत (मालूम) कर लो परन्तु
पदार्थ का पूर्ण (पूरा) २ ज्ञान होना बहुत
कठिन है क्यों कि प्रत्येक (हरएक) जैनी
भी बहुत काल तक पढते रहें तो भी नहीं
जान सकते हैं, कोई२ विद्वान पुरुष ही जान
सकते हैं यथा दृष्टान्त —पाटनपुर नाम नगर
निवासी एक "ईश्वर-कर्त्ता-भ्रमवादी" पूर्वोक्त
पदार्थज्ञान परमाणु आदि पुद्गल के स्व-
भाव के जानने के लिये जैनशास्त्र सीखनें
की इच्छा कर के जैन आचार्यों के पास शि-
ष्य हो कर विनयपूर्वक कई वरसों तक शा-
स्त्र सीखता रहा; जब अपने मनमें निश्चय
किया कि मैं पदार्थ ज्ञात हो गया (जान गया)
हूं, तब निकल कर भ्रमवादीयों में मिल जै-
निओं से चर्चा करने का आरम्भ किया
तब वह भ्रमवादी पदार्थ ज्ञान के विषय में

हार गया. क्यों कि पदार्थों के भेद बहुत हैं तथापि वह भ्रमवादी फिर जैन आचार्यों का शिष्य (चेला) बना, और विनयपूर्वक नम्र हो कर विशेष पठन किया (पढा) और उन महात्माओं ने धर्मोपकार जान कर हितशिक्षा से पठन कराया (पढाया) परन्तु वह काङ्क्षीका पात्र फिर भाग कर भ्रमवादियों में मिल चर्चा का विस्तरा बिछा बैठा, और फिर जीव, अजीव के विचार में जैनीयों से हारा इसी प्रकार से कहते हैं कि ग्यारह वीं वार पाण्डखवाग में परम पण्डित धर्मघोष अनगारजी के साथ दोनों ही पक्षों की ओर से चर्चा का आरम्भ हुआ

भ्रमवादी —तुमारे मत में पुद्‌गल का स्वभाव मिलने विछड़ने का कहा है, तो कितने समय मे (अरसे में) मिलविछड सकते हैं? और अवस्था विशेष [illegible] क रह सकते हैं?

जैनाचार्य—जघन्य (कम से कम) एक सूक्ष्म समय में मिल—बिछड़ सकते हैं, उत्कृष्ट (जियादा से जियादा) असंख्यात काल तक

भ्रमवादी—कोई दृष्टान्त (प्रमाण) भी है?

जैनाचार्य—शीशे के सन्मुख (सामने) कोई पदार्थ किया जाय तो उस पदार्थ का प्रतिबिम्ब उस शीशे (दर्पण) में शीघ्र (जल्दी) पड़ जाता है और हटाने से अर्थात् शीशे को परे करते ही हट जाता है और सान पर लोहा धरने से शीघ्र अग्नि बन कर चिनगारे निकलते हैं और जल में सूर्य की कान्ति पड़ने से शीघ्र ही साया जा पड़ता है, (इत्यादि) अब बुद्धि द्वारा सोच कर देखो कि वह पूर्वोक्त प्रतिबिम्ब (साया) और अग्नि किसी पदार्थ के तो बने ही होंगे, और कुछ

हार गया क्यो कि पदार्थों के भेद बहुत हैं तथापि वह भ्रमवादी फिर जैन आचार्यों का शिष्य (चेला) बना, और विनयपूर्वक नम्र हो कर विशेष पठन किया (पढा) और उन महात्माओं ने धर्मोपकार जान कर हितशिक्षा से पाठन कराया (पढाया) परन्तु वह काञ्जीका पात्र फिर भाग कर भ्रमवादियों में मिल चर्चा का बिस्तरा बिछा बैठा, और फिर जीव, अजीव के विचार में जैनीयों से हारा इसी प्रकार से कहते हैं कि ग्यारह वीं वार पाएडखवाग में परम पण्डित धर्मघोष अनगारजी के साथ दोनों ही पक्षो की ओर से चर्चा का आरम्भ हुआ

भ्रमवादी —तुमारे मत में पुद्गल का स्वभाव मिलने विछड़ने का कहा है, तो कितने समय मे (अरसे में) मिलविछड सकते हैं? और अवस्था विशेप कितने काल तक रह सकते हैं?

ी वुद्धि (समक्ष) मे सत्य प्रतीत हुआ
ा असत्य ?

जैनाचार्य्य—असत्य

भ्रमवादी —क्योंजी ? तुम्हारे सूत्रों में
ो पदार्थज्ञान का साराश यही है कि पुद्गल
ा मिलने-बिछुड़ने का स्वभाव ही है तो
फेर वृक्ष में से तख्ते मिलने और बिछुड़ने
ा सम्बध असत्य कैसे माना गया ?

उस समय सभासद तो क्या बल्कि
ैनाचार्य्यजी को भी सन्देह हुआ तब जैनाचा-
र्य्यजीने आहारिक लब्धी फोड़ी, अर्थात् अपने
अन्त करण की शक्ति से मतिमानों की मति से
अपनी मति मिला कर उसी वक्त पुद्गल
के छ भेद याद में लाये, और फर्माने लगे
कि, अरे भोले ! तूने पुद्गल का स्वभाव एक
मिलने-बिछुड़ने का ही सीख लिया, परन्तु यह
नहीं जानता है कि पुद्गल का परिणामी स्व-

तो होवेगा ही, जो दृष्टिगोचर (नजर में) ता है अब देखो, उस प्रतिबिम्ब के वर्ण (रङ्ग) और आकार जिन परमाणुओं से बने, उन परमाणुओं के मिलने और बिछुड़ने में कितना समय लगा ?

भ्रमवादी—सुनोजी, मैं एक दिन बाहर की भूमिका से चिन्ता मेटके पुनरपि आता था अर्थात् लौट कर आता था, रास्ते में धूप के प्रयोग से चित्त व्याकुल हुआ, तो एक आम के वृक्ष के नीचे खड़ा होता भया तब अकस्मात् (अचानक) उस वृक्ष में से तख्ते गिर२ पड़े और वह आपस में मिल२ के एक उमदा तख्त बन गया और मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु उस तख्त पर मुहूर्त्त मात्र अर्थात् दो घड़ी भर विश्राम ले कर चलने लगा तब तत्काल ही वह तख्त फट कर तख्ते उसी आम के वृक्ष में जा मिले अब कहो, भट्टाचार्य्यजी! यह कथन आप

एक रूप हो जावें, पृथग् भाव न रहे, अर्थात् जल वा दुग्धादिक को पाच सात पात्रों में माल देवें तो न्यारा२ हो जाय फिर एक में कर दें तो एक रूप ही हो जाय. (२) बादर पर्याय पदार्थ वह होता है कि न्यारा हो कर न मिले यथा काष्ठ, पत्थर, वस्त्र, आदिक अर्थात् काष्ठ के गेले को चीर कर तख्ते किये जाय फिर उनको मिलावें तो न मिलें, चाहे कील लगा कर जोड़ दो, परन्तु वह वास्तव में तो न्यारे ही रहेंगे ऐसे ही पत्थर, वस्त्रादिक भी जान लेने अब समझने की बात है कि पुद्गल तो वह भी है, और वह भी है, परन्तु वह दुग्ध, जलादिक तो बिछड़ कर मिल जाय और काष्ठ पत्थर आदि न मिलें, कारण यह है कि वह दुग्ध, जल, आ-दिक पुद्गल बादर२ पर्याय को प्राप्त हुए२ हैं, और काष्ठ, पाषाण आदिक बादर पर्याय को प्राप्त हुए२ हैं अब कहो रे भ्रमवादी! तेरा

भाव होता है, देश-काल के प्रयोग से
प्रकार के स्वभाव के भाव को परिणाम जाता
है अब तुझे पुद्गल का साराश संक्षेप से
कहता हूं, सुन (१) प्रथम तो दृष्टिगोचर
जो पदार्थ हैं उन सब का उपादान कारण
रूप एक भेद है:-परमाणुं फिर दो भेद माने
हैं:-(१) सूक्ष्म, (२) स्थूल फिर तीन भेद:-
(१) विससा (२) मिससा, (३) पोगसा फिर
चार भेद -द्रव्य (२) क्षेत्र, (३) काल, (४)
भाव की अपेक्षा से फिर पाच भेद हैं-
(१) वर्ण, (२) गध, (३) रस, (४) स्पर्श,
(५) सस्थान और फिर ७ भेद हैं -[१]
बादर बादर, [२] बादर, [३] बादरसूक्ष्म, (४)
सूक्ष्मबादर, [५] सूक्ष्म, [६] सूक्ष्म सूक्ष्म
अब बादर बादर पूद्गल पर्याय रूप क्या२
पदार्थ होते हैं ? यथा जल, दूध, घृत, तेल,
पारा आदिक इनका स्वभाव ऐसा होता है
कि इनको न्यारे२ कर देवें फिर मिलावें तो

बादर, सुगधि, और दुर्गंधि, पवन, आदिक, जो सूक्ष्मपन से दीखे तो नहीं और बादरपन से नासिका को, त्वचा को ग्राह्य होती हैं (५) सूक्ष्म, कर्मवर्गणा, अर्थात् अन्त करण, जो न तो दृष्टि अर्थात् नजर में आवे और नाही पकडाई में आवे, सूक्ष्म होने से (६) सूक्ष्म सूक्ष्म, अन्त करण की प्रकृतिया अर्थात् कर्मों का उपादान कारण रूप परमाणु, इति

अब कहोजी,भ्रमवादी! तुम्हारे ईश्वर ने इस मे क्या बनाया?

भ्रमवादी —यह जड पदार्थ भी तो ईश्वर ही ने बनाया हैं

आचार्य —हाय२ इतना सीख समझ कर भी तेरी मिथ्या बुद्धि तुझे भ्रम में गेर रही है अरे मूर्ख! तेरा ईश्वर चेतन है वा जड?

भ्रमवादी —अजी, चेतन है

आचार्य —यदि ईश्वर चेतन है तो ई-

कथन सत्य कैसे होवे? तू तो शिर के नाम
ऊधा चलता है, क्यों कि तैंने पुद्गल द्रव्य
तो कहा दूसरी बादर पर्याय वाला अर्थात् काठ,
और गुण अर्थात् स्वभाव कहा बादर२ प-
र्यायवाला, अर्थात् दूध, पानीका, जो बिछड़
कर मिल जावे, ताते तेरा कथन एकान्त
मिथ्या है

तब उस भ्रमवादी ने हाथ जोड़ कर
क्षमा (माफी) मांगी, और कहा कि आपका
कहना सत्य है मैंने पूर्वोक्त कथन मिथ्या ही
कहा था अब कृपा पूर्वक शेष (बाकी) चार
भेदों की पर्याय का भी अर्थ सुना दीजिये
गुरू बोले, सुनो, तीसरी बादरसूक्ष्म, सो धूप,
छाया, दीपक की ज्योति, प्रतिबिम्ब, आदिक,
बादरसूक्ष्मपर्याय को प्राप्त होता है, क्यों कि
इनमें बादर पन तो यह है कि प्रत्यक्ष दीखती
हैं, और सूक्ष्मपन यह है कि पकड़ाई में नहीं
आतीं, इसका नाम बादरसूक्ष्म है (४) सूक्ष्म-

बादर, सुगधि, और दुर्गंधि, पवन, आदिक, जो सूक्ष्मपन से दीखें तो नहीं और बादरपन से नासिका को, त्वचा को ग्राह्य होती हैं (५) सूक्ष्म, कर्मवर्गणा, अर्थात् अन्त करण, जो न तो दृष्टि अर्थात् नजर में आवे और नाही पकड़ाई में आवे, सूक्ष्म होने से (६) सूक्ष्म सूक्ष्म, अन्त करण की प्रकृतिया अर्थात् कर्मों का उपादान कारण रूप परमाणु, इति

अब कहोजी, भ्रमवादी! तुम्हारे ईश्वर ने इस में क्या बनाया?

भ्रमवादी —यह जड़ पदार्थ भी तो ईश्वर ही ने बनाया है

आचार्य —हायरे इतना सीख समझ कर भी तेरी मिथ्या बुद्धि तुझे भ्रम में गेर रही है अरे मूर्ख! तेरा ईश्वर चेतन है वा जड़?

भ्रमवादी —अजी, चेतन है

आचार्य —यदि ईश्वर चेतन है तो ई-

जैनी —मट्टी तो पहिले ही
(मोजूद) थी, फिर मट्टी ही से घमा बन
अपि तु घमे का कर्त्ता कुम्हार नहीं है क्यों कि
घमे का उपादान कारण तो मट्टी ही ही है ह
निमित्त कारण कुम्हार है, सो निमित्तिक तो
मिहनती होता है, परन्तु मिहनत भी सप्र
योजन होती है, यदि निष्प्रयोजन मिहनत करे
तो मूर्ख कहावे, यथा "निष्प्रयोजन किं
कार्यम्" इति वचनात् तो अब कहो कि
तुम्हारा ईश्वर सप्रयोजन मिहनत करता है
वा निष्प्रयोजन? अर्थात् ईश्वर पूर्वोक्त मिह-
नत से क्या लाभ उगाता है, और न करने
से क्या हानि रहती है?

आर्य्या —ईश्वर का स्वभाव है, अथवा
अपनी प्रभुता दिखाने को

जैनी —निष्प्रयोजन कार्य करने का
स्वभाव तो पूर्वोक्त मूर्ख का होता है, और
प्रभुता दिखानी, सो क्या को ईश्वर का शरीक

है, जिसे दिखाता है, कि देख तेरे में प्रभुता
घनी है कि मेरे में। अथवा ईश्वर को तुम नट,
या बाजीगर समझते हो, जो सब लोगों को
अपनी कला दिखाता है! परन्तु नट भी तो कला
सप्रयोजन अर्थात् दामो के वास्ते दिखाता
है अरे हठवादिओ! क्या तुम कुम्हार का दृ-
ष्टान्त ईश्वर में घटाते हो? कृत्रिम वस्तु का कर्त्ता
तो हम भी मानते हैं, यथा सयोग स-
म्बन्ध के विषय में लिख आये हैं कि सयोग
सम्बन्ध के मिलाने वाला कोई तीसरा ही होता
है, घट, पट, स्तम्भ, आदिक घट का कर्त्ता कु
लाल (कुम्हार), पट का कर्त्ता तन्तु वाय (जु-
लाहा), स्तम्भ का कर्त्ता खाती (तरखान) इ-
त्यादि परन्तु अकृत्रिम वस्तु का कर्त्ता किसी
प्रमाण से भी सिद्ध नहीं होता है, यथा आ-
काश, काल, जीव (आत्मा), कर्म (प्रकृति),
परमाणु आदिक का और एसे ही नैयायिक
भी मानते हैं 'न्यायदर्शन' पुस्तक सम्वत्

जैनी.—मट्टी तो पहिले ही (मोजूद) थी, फिर मट्टी ही से घड़ा बनाया, अपि तु घड़े का कर्त्ता कुम्हार नहीं है क्योंकि घड़े का उपादान कारण तो मट्टी ही ही है निमित्त कारण कुम्हार है, सो निमित्तिक मिहनती होता है, परन्तु मिहनत प्रयोजन होती है, यदि निष्प्रयोजन मिहनत करे तो मूर्ख कहावे, यथा "निष्प्रयोजन किं कार्यम्" इति वचनात् तो अब कहो कि तुम्हारा ईश्वर सप्रयोजन मिहनत करता है वा निष्प्रयोजन? अर्थात् ईश्वर पूर्वोक्त मिहनत से क्या लाभ उठाता है, और न करने से क्या हानि रहती है?

आर्य्या—ईश्वर का स्वभाव है, अथवा अपनी प्रभुता दिखाने को

जैनी—निष्प्रयोजन कार्य करने का स्वभाव तो पूर्वोक्त मूर्ख का होता है, और प्रभुता दिखानी, सो क्या को ईश्वर का शरीक

है, जिसे दिखाता है, कि देख तेरे में प्रभुता अधिक है कि मेरे में! अथवा ईश्वर को तुम नट, या बाजीगर समझते हो, जो सब लोगों को अपनी कला दिखाता है! परन्तु नट भी तो कला सप्रयोजन अर्थात् दामों के वास्ते दिखाता है अरे हठवादिओ! क्या तुम कुम्हार का दृष्टान्त ईश्वर में घटाते हो? कृत्रिम वस्तु का कर्त्ता तो हम भी मानते हैं, यथा सयोग सम्बन्ध के विषय में लिख आये हैं कि सयोग सम्बन्ध के मिलाने वाला कोई तीसरा ही होता है, घट, पट, स्तम्भ, आदिक घट का कर्त्ता कुलाल (कुम्हार), पट का कर्त्ता तन्तु वाय (जुलाहा), स्तम्भ का कर्त्ता खाती (तरखान) इत्यादि परन्तु अकृत्रिम वस्तु का कर्त्ता किसी प्रमाण से भी सिद्ध नहीं होता है, यथा आकाश, काल, जीव (आतमा), कर्म (प्रकृति) परमाणु आदिक का और ऐसे ही नैयायिक भी मानते हैं 'न्यायदर्शन' पुस्तक सम्वत्

१८४८ की छपी हुई ५७ पृष्ठ १५ ।
में लिखा है, १ आत्मा, २ काल, ३
काश, आदि अनित्यत्व नहीं होते,
शब्द में उत्पत्ति नित्य है, धर्मकत्व विरुद्ध
धर्म होने से, यह अनुमान है, कि शब्द
नित्य है

जैनीः—देखो ! ईश्वर कर्त्ता वादी वेदों को शब्द वत् नित्य कहते हैं, परन्तु यहा शब्द को अनित्य कहा है दयानन्दजी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ११७ पृष्ठ में लिखते हैं, कि जब यह कार्य्य रूप सृष्टि उत्पन्न नहीं हुईथी, तब एक ईश्वर और दूसरे जगत् कारण, अर्थात् जगत् बनाने की सामग्री मौजूद थी. और, और आकाशादिक कुछ न था, यहा तक कि परमाणु भी न थे देखो! यह क्या बाल बुद्धि की बात है! क्यों कि न्याय तो लिखता है कि आकाश आदि अनादि हैं और फिर यह भी बताओ कि जगत् बनाने की सा-

मग्री क्या थी? और परमाणु का क्या स्वरूप है? और सामग्री काहे की बनती है? और परमाणुं किस काम आते हैं? और जगत् बनाने की सामग्री आकाश विना काहे में धरी रही होगी? और फिर जैनी आदिकों की कहने पर शायद शंकित हो कर, छट्ठी वारके छपे हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' के आठवें समुल्लास २२४ पृष्ठ ७, ८, ९ पक्ति में लिखतें हैं -जगत् की उत्पत्ति के पूर्व (१) परमेश्वर (२) प्रकृति, (३) काल, (४) आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है यदि इनमें से एक भी न होवे तो जगत् भी न हो तो अब कहो जैनियों का अनादि सृष्टि का कहना स्विकार होने में क्या भेद रहा? और वह भी पूछना चाहिये को जब सृष्टि रचने से पहिले ही काल था तो सृष्टि किस काल में रची, अर्थात् रात्रि काल में रची वा दिन में, और किस वक्त? यदि वक्त है तो

१८४८ की छपी हुई ५७ पृष्ठ १५ में लिखा है, १ आत्मा, २ काल, ३ आकाश, आदि अनित्यत्व नहीं होते, अर्थात् शब्द में उत्पत्ति नित्य है, धर्मकत्व विरुद्ध धर्म होने से, यह अनुमान है, कि शब्द अनित्य है

जैनीः—देखो ! ईश्वर कर्त्ता वादी वेदों को शब्द वत् नित्य कहते हैं, परन्तु यहा शब्द को अनित्य कहा है दयानन्दजी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ११७ पृष्ठ में लिखते हैं, कि जब यह कार्य्य रूप सृष्टि उत्पन्न नहीं हुईथी, तब एक ईश्वर और दूसरे जगत् कारण, अर्थात् जगत् बनाने की सामग्री मौजूद थी और, और आकाशादिक कुच्छ न था, यहा तक कि परमाणु भी न थे देखो! यह क्या बाल बुद्धि की बात है! क्यों कि न्याय तो लिखता है कि आकाश आदि अनादि हैं और फिर यह भी बताओ कि जगत् बनाने की सा-

कुच्छ था ही नहीं और मुसलमान लोग भी
ऐसे ही कहते हैं, कि खुदा के हुक्म से जहा-
न बना, अर्थात् खुदा का हुक्म हुआ कि 'कुन'
ऐसा कहते ही जहान बन गया। अब देखिये,
कि जहान से पहिले तो सिवाय खुदा के और
कोई था ही नहीं जब कि कोई न था तो 'कुन'
किस को कहा, अर्थात् दूसरा कोई न था तो
हुक्म किस को दिया कि 'कर' बस, इससे सिद्ध
हुआ कि पहिले भी कोई था, जिस को शब्द
सुनाया, अथवा हुक्म दिया, तो फिर उनके
रहने की पृथिवी आदिक सब कुछ होगा. और
दयानन्दजी भी स० वी० १९५४ के छपे हुए
सत्यार्थ प्रकाश' के आठवें समुल्लास २३६
पृष्ठ १६ पंक्ति में लिखते हैं, कि जब सृष्टि का
समय आता है तब परमात्मा इन सूक्ष्म प-
दार्थों को इकट्ठा करता है, प्रकृतियों से तत्वे-
न्द्रिय आदिक मनुष्य का शरीर बना कर उस
में जीव गेरता है, विना माता पिता युवा मनु-

सूर्य्य और चन्द्र बिना वक्त कैसे हुआ ?

आरिया.—हम तो सृष्टि कर्त्ता ईश्वर ही को मानते हैं

जैनी.—सृष्टि को ईश्वर कैसे करता है

आरिया.—शब्द से जगदुत्पत्ति हुई है.

जैनी—शब्द से जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई ?

आरिया —माण्डूक्योपनिषदादि में श्रुतिका मत्र है "एकोऽहं बहुस्याम्" अर्थात् सृष्टि से पूर्व (पहिले) व्योम शब्द, अर्थात् ईश्वर ने आकाश वाणी बोली, कि मैं एक हू और बहुत प्रकार से होता हू, ऐसे कहते ही सृष्टि बन गई

जैनी —भवाजी ! सृष्टि तो पीछे बनी और शब्द पहिले बना (हुआ) तो ईश्वर ने किस को सुनाने के लिये कहा, और किस ने सुना, और कौन साक्षी (गवाह) हुआ, कि यह व्योम शब्द हुआ है? क्यों कि पहिले तो

कुच्छ था ही नहीं और मुसलमान लोग भी ऐसे ही कहते हैं, कि खुदा के हुक्म से जहान बना, अर्थात् खुदा का हुक्म हुआ कि 'कुन' ऐसा कहते ही जहान बन गया। अब देखिये, कि जहान से पहिले तो सिवाय खुदा के और कोई था ही नहीं जब कि कोई न था तो 'कुन' किस को कहा, अर्थात् दूसरा कोई न था तो हुक्म किस को दिया कि 'कर' बस, इससे सिद्ध हुआ कि पहिले भी कोई था, जिस को शब्द सुनाया, अथवा हुक्म दिया, तो फिर उनके रहने की पृथिवी आदिक सब कुछ होगा. और दयानन्दजी भी स० वी० १९५४ के छपे हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' के आठवें समुल्लास २३६ पृष्ठ १६ पंक्ति में लिखते हैं, कि जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा उन सूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है, प्रकृतियों से तत्वेन्द्रिय आदिक मनुष्य का शरीर बना कर उस में जीव गेरता है, विना माता पिता युवा मनु-

ष्य सहस्रश (हजारहा) बनाता है, फिर मैथुनी पुरुष होते हैं

तर्क —अब देखिये, प्रथम तो माता पित बिना पुरुष का होना ही एकान्त असम्भव है यथा वृक्ष बिना फल का होना भला ! ईश्वर ने अपनी माया से बनाये कह ही दिये परन्तु यह तो समझना ही पड़ेगा, कि वह हजारो पुरुष पृथिवी विना क्या आकाश में ही लटकते रहे होंगे ? अपितु नहीं, सृष्टि पहिले ही होगी, और उसमें मनुष्य भी होंगे, यह प्रवाह रूप सिलसिलायों ही चला आता है क्यों भ्रम में पड़ कर ईश्वर को सृष्टि के बनाने का परिश्रम उठाने वाला मान बैठे हो और फिर २३७ पृष्ठ १७ पंक्ति में लिखते हैं —

प्रश्न —मनुष्य सृष्टि पहिले, वा पृथिवी आदिक ?

उत्तर —पृथिवी आदिक क्यों कि पृथिवी विना मनुष्य काहे पर रहें ?

देखो परस्परविरोध ! हाय अफसोस! अपने कथन का भी बंधन नहीं, कि हम पहिले तो क्या लिख चुके हैं, और अब क्या लिखते हैं? परन्तु क्या करें? मिथ्या के चरित्र ऐसे ही होते हैं !

जैनी—भला, ईश्वर तो चेतन है और सृष्टि जड है, तो चेतन ने जड कैसे बना दिये?

आरिया:—परमाणुओं को इकट्ठा करश के सृष्टि बनाता है

जैनी—क्या, ईश्वर के तुम हाथ पाव मानते हो,जिनसे वह परमाणु इकट्ठे करता है?

आरिया—ईश्वर के हाथ पाव कहांसे आये? ईश्वर तो निराकार है

जैनी—तो फिर परमाणु काहेसे इकट्ठे करता है?

आरिया —अपनी इच्छा से.

जैनी —ओहो! तो फिर तुमने सम्वत् १९५४ के छपे हुए "सत्यार्थ प्रकाश" के चौद-

९वें समुल्लास ५९५ पृष्ठ १४ वीं पंक्ति मुसल्मानों के कहने पर तर्क कैसे करी है, कि खुदा के हुक्म से जहान कैसे बन गया? जबकि हम तुमसे पूछते हैं कि सृष्टि इच्छा से कैसे बन गई? अरे भोले! औरों पर तो तर्क करनी और अपने घर की खबर ही नहीं! क्यों कि हुक्म तो वचन की क्रिया है और इच्छा मन की क्रिया है. क्या, मरजी कोई बुहारी (झाडू) है कि जिससे परमाणु इकट्ठे करके सृष्टि बनाई! हाय अफसोस! पूर्वोक्त शास्त्रों के अङ्क ही बहकाये जाते; क्यों कि जब तुम ईश्वर को निराकार मान चुके हो तो इच्छा कहासे आई? हे भाई! तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है, कि मरजी एक अन्तःकरण की प्रकृति होती है, अर्थात् मन, मरजी, इच्छा, सकल्प, ख्याल, भाव, प्रणाम यह सब अन्तःकरण के कर्म अर्थात् फेहल हैं. ताते, समझना चाहिये कि जिसके अन्तःकरण अर्थात् सूक्ष्म देह होगी. उसके स्थान

देह भी होगी; और जिसके स्थूल देह होगी उसके सूक्ष्मदेह अर्थात् अन्तःकरण भी होगा. तां ते तुमारा पूर्वोक्त कथन मिथ्या है, जो कहते हो कि ईश्वर की इच्छा से सृष्टि बनती है. ईश्वर के तो इच्छा ही नहीं है,तो बनता बनाता क्या? ईश्वर तो सर्वानन्द सदा ही एकरस कहता है बस वही सत्य है जो उपर लिख आये हैं,कि अकृत्रिम वस्तु का कर्त्ता नहीं हो सकता है, क्यों कि जब ईश्वर अनादि है तो ईश्वर के जाननेवाले भी और नाम लेने वाले भी अनादि होने चाहिये, क्यों कि जब ईश्वर है; तो ईश्वर के गुण कर्म, स्वभाव भी साथ ही हैं.तो ऐसा हो ही नहीं सक्ता कि ईश्वर को कोइ जाने ही नहीं, और नाम लेवे ही नहीं, और ईश्वर कुछ करे ही नहीं.अगर ऐसा हो तो ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव नष्ट हो जावें, और ईश्वर की ईश्वरता भी न रहे न तो ऐसा मानना पड़ेगा कि ईश्वर कभी है, और कभी नहीं;

इवें समुल्लास ५९५ पृष्ठ १४ वीं पंक्ति में मुसल्मानों के कहने पर तर्क कैसे करी है, कि खुदा के हुक्म से जहान कैसे बन गया? जब, हम तुमसे पूछते हैं कि सृष्टि इच्छा से कैसे ब न गई? अरे भोले! औरों पर तो तर्क करनी और अपने घर की खबर ही नहीं। क्यों कि हुक्म तो वचन की क्रिया है और इच्छा मन की क्रिया है. क्या, मरजी कोई बुहारी (झाडू) है कि जिससे परमाणु इकट्ठे करके सृष्टि बनाई? हाय अफसोस! पूर्वोक्त शास्त्रों के अक्षर ही बहकाये जाते; क्यों कि जब तुम ईश्वर को निराकार मान चुके हो तो इच्छा कहासे आई? हे भाई! तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है, कि मरजी एक अन्तःकरण की प्रकृति होती है, अर्थात् मन, मरजी, इच्छा, सकल्प, ख्याल, भाव, प्रणाम यह सब अन्त करण के कर्म अर्थात् फेहल हैं. ताते, समझना चाहिये कि जिसके, अन्त-करण अर्थात् सूक्ष्म देह होगी, उसके स्थूल

भी जेनियों पर तर्क करते हैं,कि जैनी जम्बूद्वीप में दो चांद और दो सूर्य्य मानते हैं, और और लोग कई स्थूल दृष्टिवाले भी सुन२ कर विस्मित (हैरान) होते हैं. परन्तु यह खबर नहीं कि दयानन्द उक्त "सत्यार्थ प्रकाश" समुल्लास आठवें २४२ पृष्ठ के नीचे प्रश्न लिखते है, कि इतने बड़े २ भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण करता है?

उत्तर—अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक, एक परमाणु के तुल्य नहीं कह सकते, अब देखिये, कि असख्य लोक लिखता है, जब कि असंख्य लोक होंगे तो क्या वह अंधकार से ही पूरित होंगे? अपितु नहीं, असंख्य लोक होंगे तो एक २ लोक में यदी एक २ चाद, सूर्य्य भी होगा तो भी असख्य चाद सूर्य्य अवश्य ही होंगे और गुरू नानक साहिबजी अपने बनाये हुए जपजी साहिब की बाईसवीं पौड़ी में लिखते हैं

क्यों कि यदि ईश्वर सदा अर्थात् हमेश कर्म करता कहता हो तो दुर्भिक्ष अर्थात् काल पड़ने के समय और महामारी (मरी) पड़ते में लाखों मनुष्य वा पशु आदिक जीव मरते हैं, तो उनकी रक्षा क्यों नहीं करता?

आरिया:—उनके कर्म!

जैनी—यह कहना तो कर्मकाण्डवादियों का है, कि कर्म ही निमित्तों से फल भुगताते हैं उसमें ईश्वर का दखल ही नही है. बस, वही ठीक है जो कि जैनी लोग कहते हैं कि ईश्वर अनादि ह, और ईश्वर को जानने वाले वा स्मरण(याद) करनेवाले भी अनादि ही से चले आते हैं, और उनके रहने का जगत् अर्थात् सृष्टि भी अनादि है, अर्थात् चतुर्गति रूप संसार, नर्क, तिर्य्यञ्च, मनुष्य, देवलोक, ज्योतिषी देव, अर्थात् सूर्य्य और चन्द्र भी अनादि से हैं. और देखिये "सत्यार्थ प्रकाश" समुल्लास बारहवे में दयानन्द-

जी जैनियों पर तर्क करते हैं, कि जैनी जम्बूद्वीप में दो चाद और दो सुर्य्य मानते हैं, और और लोग कई स्थूल दृष्टिवाले भी सुन२ कर विस्मित (हैरान) होते हैं. परन्तु यह खबर नहीं कि दयानन्द उक्त "सत्यार्थ प्रकाश" समुल्लास आठवें २४२ पृष्ठ के नीचे प्रश्न लिखते है, कि इतने बड़े २ भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण करता है?

उत्तर—अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक, एक परमाणु के तुल्य नहीं कह सकते. अब देखिये, कि असंख्य लोक लिखता है, जब कि असंख्य लोक होंगे तो क्या वह अंधकार से ही पूरित होंगे? अपितु नहीं, असंख्य लोक होंगे तो एक २ लोक में यदी एक २ चाद, सूर्य्य भी होगा तो भी असंख्य चाद सूर्य्य अवश्य ही होंगे और गुरू नानक साहिबजी अपने बनाये हुए जपजी साहिब की बाईसवीं पौड़ी में लिखते हैं

कि, पाताखां पाताख खख, आकाशां
ओम्क, ओम्क नाल थके वेद कहत ९
परन्तु जैनियों के कहने पर
(हंसी) करे बिन नहीं रहते हैं
त्य कहा है, कि गल्लू को दिन से ही
है. यथा जैनी खोग शास्त्रानुकूख कहते हैं,
जख, आदि कों में जीव होते हैं, तो ७
करना, और अब माक्टरों ने खुर्दवीन
के प्रयोग द्वारा आखों से देख खिये हैं,
जल के एक बिन्दु में असरूय जीव हैं,
सनातन जैनियो में यह बात नहीं है, कि
सत्य (झूठ) बोखने और गाखिया देने
कमर बाध खेवे

आरिया —अजी तुम सृष्टि को कैसे मानते हो?

जैनी —इस प्रकार से, कि जब जैन मतानुयायी और वैदिक मतानुयायी खोग भी
इस बात को प्रमाण (मजूर) कर चुके हैं,

कि परमाणु आदिक जड़ प्रकृति पदार्थ अनादि है, तो पदार्थ में मिलने वा बिछड़ने आदि का स्वभाव भी अनादि ही होगा, अर्थात् परमाणुओं का तर और खुश्क आदि स्पर्श होने से परस्पर सम्बध होने का स्वभाव, यथा चिकने घड़े पर गर्द (धूलि) का जम जाना, इत्यादि जब कि स्वभाव अनादि है तो उनके मिलाप से पिंड रूप पृथिवी भी अनादि हुई जब पृथिवी अनादि हुई तो पृथिवी के आधार स्थावर, जंगम, जीवयोनि भी होगी, अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु और उनके साथ ही चन्द्र सूर्य्य आदिक ज्योतिषियों का भी भ्रमण होगा, और ज्योतिषियों के भ्रमण स्वभाव से सर्दी गर्मी की परिणमता, अर्थात् ऋतुयों (मौसमों) का बदलना, और साथ ही वायु का बदलना, और ज्योतिषियों की भ्रमण (आकर्षण शक्ति) अर्थात् खैंच से वायु और रज मिल कर आंधी और बादल का होना और

पूर्व अर्थात् परवा वायु की गर्मी में, प
श्चात् पछवा वायु की सर्दी का जामन लगने
सम्मुर्छेम जल का जमाव होना, और जमे
जल में वायु की टक्कर लगने से अग्नि का
(पैदा) होना अर्थात् बिजली का
फिर ढलाव हो कर हवा से मिल कर गर्जाट
होना, और बारिश का होना, जल रूप घटा
सूर्य्य की किरण मुकाबले पर, अर्थात् पूर्व
घटा पश्चिम को सूर्य्य, वा पश्चिम को
और पूर्व को सूर्य्य, इस प्रकार पड़ने से
काश में पञ्च रङ्ग धनुष का पड़ना, इत्यादि या
सिल सिला प्रवाह रूप अनादि भाव से
चला आता है हा, पूर्वोक्त देशकाल के प्रयोग
से कभी कम और कभी जियादा आबादी
जाती है, जैसे हेमन्त ऋतु (सर्दी के मौसम
में सर्दी (खुश्की) के प्रयोग से वनराई के प
जल कर प्रलय अर्थात् उजाड़ हो जाती है
और वसन्त (मधु) ऋतु में गर्मी तरीके प्र

योग मे वनराई प्रफुल्लित अर्थात् आवाद हो जाती है अव इसमें जो सदेह (शक) होवे सो प्रकट करना चाहिये, न तु सत्य मार्ग को स्विकार (ग्रहण) करना चाहिये आगे अपनी २ बुद्धि के आधीन (अख्तियार) है

९ वा प्रश्न

आरिया—जो आपने कहा सो तो सत्य है, परन्तु यदि ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता न मानें तो ईश्वर कैसे जाना जावे ?

जैनी—जिस प्रकार से महात्मा ऋषियों ने जाना है, और सूत्रों में लिखा है, जिसका स्वरूप हम प्रथम प्रश्न के उत्तर में लिख आये हैं और यह युक्ति (दलील) से भी प्रमाण है हम देखते हैं कि जगत् में एक से एक आल्हादर्जे के अक्लमंद आदमी हैं, अर्थात् योगीश्वर,साधु, और सतीजन, राजेश्वर, मत्रीश्वर, वकील, जौहरी

आदिक, बडी २ दूर तक बुद्धि दौडाते
और बडी २ विद्या का पास करते हैं,
(बल्कि) कई धर्मात्मा पुरुष ईश्वर
को पहुचाते हैं, तो प्रतीत हुआ कि जं.
चेतन, अर्थात् मनुष्य मात्र में कितना
है तो कोई वह भी चेतन चिद्रूप होगा,
जिसको परे से परे सपूर्ण ज्ञान होगा,
र्थात् वही सर्वज्ञ ईश्वर है, ऐसे जाना जावे

१० वा प्रश्न

आरिया —भला ! यह भी यथा
है परन्तु यदि ईश्वर को सुख दु ख का
दाता न माना जावे तो फिर ईश्वर का जा
अर्थात् नाम लेने से क्या लाभ है ?

उत्तर जैनी —भला! यह कुछ बुद्धि की
बात है कि जो सुख दु ख देवे उसी का नाम
लेना, और किसी भद्र पुरुष (भले मानसका)
नाम न लेना? अरे भोले! जो सुख दु ख देवे

ाम लेवावे वह नाम ही क्या, और जो सुख
ःख के लोभ (लालच) से और भय (खौफ)
ं नाम लेवे वह जाप ही क्या? यथा किसी
ुरुषने आम लोगों से कहा कि तुम मेरा नाम
। २ कर मेरी तारीफ करो, मैं तुम्हे लड्डू दूगा,
अथवा टका दे कर अपने नाम का ढंडोरा फिर-
ा दिया तो क्या वह उसकी तारीफ हुई
ा जाप हुआ? अपि तु नहीं, यह तो खुशा-
मदी मामला हुआ, लालच दे के चाहे कुछ
ी कहवालो, और किसीने कहा कि तुम
ारी प्रशसा (बडाई) करो, यदि न करोगे
ो मार दूगा, तब मृत्यु के भय (डर) से
ाम लेने लगे, तो क्या वह जाप हुआ? ब-
लवान् (जोरावर) आदमी किसी दुर्बल अ-
र्थात् दुर्बल पुरुष को धमका कर उससे चाहे
कुछ कहा ले अरे नाई! जो सुख दुःख नहीं
देता है, और जो निष्प्रयोजन वीतराग परमे-
श्वर है उसीको नाम लाभकारक (फायदे-

मन्द) है, और जाप नाम जी उसीका जो कि विना ही लोज वा जय के केवल अपने चित्त की वृत्ति को टिकाने के लिये और अन्त करण शुद्ध करने के लिये गुणी के गुणों को याद करे, यथा, किसी एक वणिक पुत्र अर्थात् बनिये के पुत्र ने देशान्तर कलिकत्ता आदिक में जा कर डुकान की और वहुत ही नेक नीयत से व्यवहारिक पुरुषों से मिल कर बमी मेहनत से सौदा लेना वा देना, वा ग्राहकों से मीठा वोलना, इस जान्ति से उसने वहुतसा डव्य उपार्जन किया अर्थात् कमाया, और अपने पिता का ऋण अर्थात् कर्जा चुकाया, और सत्य वोलना, वमों के सामने नीची दृष्टि (नजर) रखनी, और जाईयों का सत्कार (खातिरदारी) करनी, इस प्रकार से विचरता था अव उसकी श्लाघा (तारीफ) उस देश के वा अन्य देशों के (मुल्कों के) बनिये लोग अपनीश डुका-

नों पर बैठ कर अपने २ पुत्र और मित्रादि-
कों से कहने लगे, कि देखो! देवदत्त बनिये का
पुत्र सोमदत्त कैसा सुपूत है, कैसा कमाऊ
और नेक नीयत है, सो तुम भी ऐसे ही बनो
तब उस कहने वाले और सुननें वालों का चित्त
दिल भी उस गुणी के गुणों को तर्फ आ-
सक्त हो आकर्षित (खेंच) हुआ, और
नेक हुआ, कि हमको भी ऐसे ही कमाऊ हो
कर सुखी होना चाहिये, और दुष्ट संगति
(खोटों की सोहबत) और खोटे कर्त्तव्य को
छोड़ देना चाहिये इस प्रकार से उनको गु-
णिजनों के गुण गाने, और सुनने से नेक नी-
यत और नेक चलन बनने से सुख का लाभ
भी होगा परन्तु यह सोचो कि उस बनिये
के पुत्रने उन्हें क्या सहारा दिया, अर्थात् क्या
उस ने तार भेजा था, वा मोदक भेजे थे, वा
दाम भेजे थे, वा भय प्रदान किया था, कि तुम
मेरी तारीफ करो अपि तु नहीं, उसे कुछ पर-

मन्द) है, और जाप नाम भी उसीका है, जो कि विना ही लोभ वा भय के केवल अपने चित्त की वृत्ति को टिकाने के लिये और अन्त करण शुद्ध करने के लिये गुणी के गुणो को याद करे, यथा, किसी एक वणिक पुत्र अर्थात् वनिये के पुत्र ने देशान्तर कलिकत्ता आदिक में जा कर दुकान की और बहुत ही नेक नीयत से व्यवहारिक पुरुषों से मिल कर वडी मेहनत से सौदा लेना वा देना, वा ग्राहकों से मीठा बोलना, इस भान्ति से उसने वहुतसा द्रव्य उपार्जन किया अर्थात् कमाया, और अपने पिता का ऋण अर्थात् कर्जा चुकाया, और सत्य बोलना, वडों के सामने नीची दृष्टि (नजर) रखनी, और भाईयों का सत्कार (खातिरदारी) करनी, इस प्रकार से विचरता था अव उसकी श्लाघा (तारीफ) उस देश के वा अन्य देशों के (मुल्कों के) बनिये लोग अपनीर दुका-

और तुमारा दयानन्द भी उक्त सत्यार्थ प्रकाश' के १८९ पृष्ठ पर हमारी भ्रान्ति इस विषय में प्रश्नोत्तर करके लिखता है

प्रश्न —स्तुति करने से ईश्वर उनके पाप छुड़ा देगा ?

उत्तर—नहीं

प्रश्न —तो फिर स्तुति क्यों करनी ?

उत्तर—स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना है

११ वा प्रश्न

आरिया—क्यों जी, पहिले जैन है वा आर्य ?

जैनी –आर्य्य नाम तो जैन ही का है, और जैन धर्म ही के करने वाले जिन २ देशों में थे, उन २ देशों का नाम, प्रज्ञापनजी सूत्र में आर्य्य देश लिखते हैं और इसी का-

वाद नहीं, परन्तु गुणीजनों के गुण खुद ही गाये जाते हैं, और गा कर पूर्वोक्त लाभ उ-ठाते हैं इसी तरह से परमात्मा में,सर्वज्ञ, स-र्वानन्द, अखंण्डित, अविनाशी इत्यादि अ-नन्त गुण हैं, परन्तु ईश्वर सुख दुःख दे कर मनुष्यों से बड़ाई अर्थात् अपना नाम नहीं स्मरण करवाता है सत्संगी पुरुष खुद व खुद ही परमेश्वर के परमगुण रूप ज्योति में अपनी सुरती रूप वत्ती लगा कर अपने हृदय में गु-णों का ज्ञान प्रकाश करते हैं, और उसीका नाम ध्यान है इसी प्रकार से ईश्वर का ध्यान और जाप अर्थात् गुणों के याद करने से चि-त्त में भले गुणों का निवास हो जाता है, और अपगुणों अर्थात् विकारों का नाश हो जाता है, यही पूर्ण धर्म है और इत्यादिक धर्मसे दुर्गति दूर हो जाती है, और शुभ गति प्राप्त होती है, अर्थात् इच्छा रहित कर्म रहित हो कर मोक्ष का लाभ हो जाता है,

(जइ) यदि (तंसि) तेरी, (जोगे) जोगों के विषय में, (चइओ) त्याग बुद्धि की, (असत्तो) असमर्थता है अर्थात् संयम लेने की ताकत नहीं है, तो (अज्जाइं) आर्य्य (कम्माई) कर्म (करे हीण्यं) कर हे राजन्! वह आर्य्य कर्म क्या (धम्मे ठिओ) वीतराग जाषित धर्म के विषे स्थित हो कर, (सव पयाणुकंपी) सर्व पद अर्थात् सर्व जीवों के जेद त्रस्स और थावर इनका (अणुकंपी) दयावान् हो, (तो होहिसि) तू जी होगा, (देवो) देवगति का वासी, अर्थात् देवता, (वी ओवी) विक्रिय शरीरवाला, इति

और जगवतीजी सूत्र शतक २ य, उद्देशा ठठवा, तुङ्गापुर के श्रावक जैनाचार्य्य जी को पूछते हैं—

गाथा

संजमेण जंते किं फले, तवेणं जंते कि फले, ततेणं तेथेरा जगवंता ते समणो वासय,

रण से आर्य्य भरतखण्ड ऋषभ देवजी वान् के वक्त से कहलाया, अनन्तर (बाद में) राजा भरत चक्रवर्त की अमलदारी ७ खण्ड में होने से भारतखण्ड नाम से प्रसिद्ध (मशहूर) हुआ और जैन शास्त्र जो सनातन हैं जिनकी लिखित भी अनुमान हजार वर्ष तक की मिलने का ठिकाना दीखे हैं, उनमें भी जहा जैनियों के परस्पर वार्त्तालाप का कथन आता है वहा आर्य नाम से बुलाया गया है, यथा श्रीमत् उत्तराध्ययनजी, सूत्र अध्ययन तेरहवा गाथा ३२ वीं में लिखा है—

जइ तसि भोगे चइउं असत्तो,
अज्जाइ कम्माइ करे हीएय,
धम्मे ठिउ सब्व पयाणु कपी,
तो हो हिसि देवोइ ओवि ओघी॥३२॥

जैनाचार्य्यजी उपदेश करते हुए ब्रह्मदत्त राजा प्रत्ये —

(जइ) यदि (तंसि) तेरी, (नोगे) नोगों के विषय में, (चइओ) त्याग बुद्धि की, (असत्तो) असमर्थता है अर्थात् संयम लेने की ताकत नहीं है, तो (अज्जाइं) आर्य्य (कम्माई) कर्म (करे हीपयं) कर हे राजन्! वह आर्य्य कर्म क्या (धम्मे ठिओ) वीतराग नाषित धर्म के विषे स्थित हो कर, (सव पयाणुकंपी) सर्व पद अर्थात् सर्व जीवों के नेद त्रस्स और थावर इनका (अणुकंपी) दयावान् हो, (तो होहिसि) तू नी होगा, (देवो) देवगति का वासी, अर्थात् देवता, (वीओवी) विक्रिय शरीरवाला, इति

और नगवतीजी सूत्र शतक २ य, उद्देशा ५ठवा, तुङ्गापुर के श्रावक जैनाचार्य्य जी को पूछते हैं—

गाथा

संजमेण नते किं फले, तवेणं नंते किं फले, ततेण तेथेरा नगवंता ते समणो वासय,

एवं वयासी संजमेणं अज्जोअण एहय फले त-
वेणं वोदाण फले

अर्थ –(सं०) संयम का हे पूज्यजी क्या फल
तप का हे पूज्यजी ! क्या फल? (ततेणं०)
तव ते थेवर भगवत (समणो वासय०) श्रा-
वक प्रत्ये (एव०) यों बोले, (सजमेण०)
संयम का (अज्जो) हे आर्य्य (अणएह०)
अनाश्रव अर्थात् आगामि समय को पुण्य
पाप रूप कर्म का अन्त करण में-से भयकान
होना यह फल है, (तवेणं) तप का, (वोदाण
फले) पूर्व किये हुए कर्म जो अन्त करण में
सञ्चय थे, उनका क्षय होना, यह फल है

एसे ही प्रत्येक स्थान (हर जगह) सू-
त्रों में जैनी लोग जैनियों को आर्य नाम से पु-
कारते आये हैं इनके सिवाय आर्य मत
कौनसा है ? हां,आर्य्यावर्त्त के रहने वाले हि-
न्दु लोगों को भी देशीय भाषा में आर्य्य क-
हते हैं हां, अब एक और ही नवीन मत ३५

था ४५०वर्ष के लगलग समय से 'आरिया' नाम से प्रचलित हुआ है, जिस के कर्त्ता दयानन्द जी हुए हैं, जिनका प्रसंग कुछ आगे लिखा जायगा.

और जैनी आर्य्यों के ही यह नियम हैं:- (१) जीव हिंसा का न करना, (२) असत्य न बोलना और मिथ्या साक्षी (झूठी गवाही) न देना, (३) चोरी न करना और निक्षेप अर्थात् धरोरू का न मारना और राजा की जगात न मारना, (४) परनारी वा परधन से दिल को मोड़ना, (५) विशेष तृष्णा का न बढाना और खोटा व्यापार-शस्त्र तथा विष आदि का न बेचना, (६) लोभ मे आ कर नीच कसाई आदिओं कों व्याज पर रुपैया न देना, (७) द्यूत (जूआ) न खेलना, (८) मास का न खाना, (९) मदिरा पान का न करना, (१०) रात्रि समय भोजन का न करना, (११) कन्दमूल का न खाना, (१२) अन गना जल न पीना,

(१३) प्रातःकाल में परमात्मा आदि गु- के गुण स्मरण रूप जप का करना, (१४ शास्त्रीय विद्या अर्थात् धर्म शास्त्र का पठन (१५) सुपात्र को दान देना, (१६) सबके साथ शिष्टाचार (मित्र भाव) रखना.

जैन आम्नायके साधुओंके नियम:-१हिंसा,२मिथ्या,३चोरी,४मैथुन,५परिग्रह इनपांचो आश्रवों का त्याग करना, और १दया,२सत्य, ३दत्त, ४ब्रह्मचर्य्य, ५निर्ममता, यह पांच 'यम' अर्थात् इन पाच महाव्रतों के धारक, जिन की पहिचान (शनाखत) श्वेतवस्त्र, और मुखवस्त्रिकाका मुख पर बाधना, रजोहरण अर्थात् एक ऊनका गुच्छा जीव रक्षा के निमित्त संग रखना, १ कौडी पैसे का न रखना, २ सर्वदा यति पनमें रहना, ३ फल फूल आदि सुचित्त वस्तु का आहार अर्थात् भोजन न करना ४ भिक्षा मात्र जीविका, अर्थात् आर्य्य लोगों के घर द्वार जा कर माग कर निर्दोषी भिक्षा

ले कर अपनी उदरपूर्त्ति करनी, ५ मनको वश करने के लिये ज्ञान वृद्धि अर्थात् धर्म शास्त्र का अभ्यास करते रहना, ६ परोपकार के लिये धर्मोपदेश को भी यथा बुद्धि करते रहना, ७ इंन्द्रियों को वश करने के अर्थात् विषयों की निवृत्ति के लिये यथा शक्ति तप, और व्रत आदिकों का करना, ८ अन्तकाल में अनुमान से, मृत्यु आसन्न (नजदीक) जान कर 'संग लेखन' अर्थात् इच्छा निरोध के लिये देह की प्रीति को त्यागता हुआ संगतुष्टि हो कर खान पान आदिक सर्व आरंभ का त्याग करना और इन जैनी साधुओं के शुभ आचार (चलनों) से, और सत्य उपदेश से पादशाहों और राजों को भी बहुत लाभ पहुचता है, यथा राजा लोग अपने पास सें द्रव्य दे कर चौंकी पहरा लगा२ कर चोरी, चुगली, खून आदिक दुष्ट कर्मों से बचा २ कर प्रजा की रक्षा कर २ के अपने राज्य को

(१३) प्रातःकाल में परमात्मा आदि गुरु के गुण स्मरण रूप जप का करना, (१४) शास्त्रीय विद्या अर्थात् धर्म शास्त्र का पठन (१५) सुपात्र को दान देना, (१६) सबके साथ शिष्टाचार (मित्र भाव) रखना

जैन आम्नायके साधुओंके नियमः—१हिंसा,२मिथ्या,३चोरी,४मैथुन,५परिग्रह इनपांचो आश्रवों का त्याग करना, और १दया,२सत्य, ३दत्त, ४ब्रह्मचर्य्य, ५निर्ममता; यह पांच 'यम' अर्थात् इन पांच महाव्रतों के धारक, जिन की पहिचान (शनाखत) श्वेतवस्त्र, और मुखवस्त्रिकाका मुख पर बाधना, रजोहरण अर्थात् एक ऊनका गुच्छा जीव रक्षा के निमित्त संग रखना, १ कौड़ी पैसे का न रखना, २ सर्वदा यति पनमें रहना, ३ फल फूल आदि सुचित्त वस्तु का आहार अर्थात् भोजन न करना ४ भिक्षा मात्र जीविका, अर्थात् आर्य्य लोगों के घर द्वार जा कर माग कर निर्दोषी भिक्षा

। प्रत्यक्ष प्रमाण है, कि जिस प्रकार से अ-
न्य मतावलम्बी जनों के अर्थात् कुसंगी पु-
षों के मुकद्दमें सर्कार में खून, चोरी, परनारी
रण इत्यादि के आते हैं, ऐसे जैनी लोगों में
। अर्थात् जो साधुओं के उपासक है, कदापि
। आते होंगे, कोई तकदीरी अमर की बात
ही नहीं जाती

पृच्छक—अजी! हमने सुना है कि जैन
शास्त्रो में मासभक्षण भी कहा है

उत्तर—कदापि नहीं यदि कहा होता
तो अन्य मतानुयायी लोगों की भान्ति जैनी
पुरुष भी खूब खाते, यह अपना पूर्वोक्त मन
तन क्यों मोसते ?

प्रश्न —१ भगवती जी सूत्र शतक पन्द्र-
हवें में सींहा अनगार ने रेवती श्राविका के
घरसें महावीरजी को मास ला कर दिया है,
और २ आचाराङ्गजी के दशवें अध्ययन में
मत्स्य-मास साधु को दिया लिखा है, और

निर्नय पालते हैं, और यह जो पूर्वोक्त
बिना दाम, बिना दबाव पूर्व, पश्चिम, दक्षिण
उत्तर, जहां२ इन्हों के तप संयम साधन वृ-
त्ति का निर्वाह हो सकता है तहां२ देशान्तरों
में नग्नपाद,(बिना सवारी) पुरुषार्थ कर के विचर
ते हुए धर्मोपदेश करते रहते हैं. जो हजूरी
हुक्म पूर्वोक्त धर्मावतार जैनाचार्य्यों ने फर्मा-
या है, सो क्या, कि हे बुद्धिमान् पुरुषो ! १
त्रस, आदि जीवों की हिंसा मत करो, २ ग-
रीबों को मत सताओ, ३ पशुओं पर अधिक
भार मत लादो, ४ मिथ्या साक्षी [गवाही]
मत दीजो ५ झूठा दावा मत करो, ६ तस्करता
मत करो, ७ राजाकी जगात [महसूल] मत
मारो, ८ परनारी वा परधन को मत हरो, इ-
त्यादि और इन साधुओं के उपदेश द्वारा ही
जैनी लोग जूं, लीख तक की भी हिंसा नहीं
करते हैं, और पूर्वोक्त नियमों का पालन भी
सत्संगी बहुलता से करते हैं, और इसमें यह

महारंभयाए —महा खोटा - वणिज, हारू चाम आदि पन्द्रह कर्मादान (महा प-रिग्गहाए) महातृष्णा अर्थात् कसाई आ-दिकों को विआजू द्रव्य देना, (पचिंदिय व-हेणं) पञ्चेन्द्रिय जीव का वध करना, (कुण-माहारेण) मासाहारी मधु मास के खानेवाला, इन पूर्वोक्त चार कर्मों के करनेवाला नर्क में जाता है, और दशमाग प्रश्न व्याकरण षष्ठ अध्ययन प्रथम सम्बर द्वारे जैन साधु के अ-धिकार में सूत्र लिखा है, "अमजो मंसासणे हिं" अर्थात् साधु मद्य, मास, रहित आहार करे, ऐसे कहा है ता ते जो आचारागजीके दशवें अध्ययन में कहा है, "बहु अठिएणं मस मच्छेण ड, उवणि मत्तेजा" सो सब यह फलो के नाम हैं वहा मास नाम से फलका दल, और अस्थि नाम से फल की गुठली, क्यों कि सूत्र जीवाभेगमजी में वा सूत्र प्रज्ञा-पनजी में प्रथम पद वनस्पति के अधिकार में

३ ज्ञाताजी अध्ययन पाचवें में शेलक ...
को पन्थिक साधु ने मधु मांस खा कर
है, और ४ उत्तराध्ययनजी अध्ययन बाईसवे
में नेमजी की वरात के लिये उग्रसेन राजाने
पशुओं को रोका है.

उत्तर —भगवतीजी में सींहा अनगार
ने महावीरजी को पाक नामक औषध ला
कर दिया है, जो पेचिश की बीमारी के काम
आता है, और जो लोग मास कहते हैं, व
जैन सूत्रों के अनभिज्ञ [अजान] जैन मत
से भृष्ठ हैं क्यों कि जैनसूत्र भगवतीजी, में
स्थानागजी चतुर्थ स्थान में, उवाईजी में
मांसाहारी की नर्क गति कही है

गाथा.

एव खलु च ओहिं ठाणे हिं जीवा, णे
रइयत्ता ए, कम्म, पकरेताणे रइए सुओव क
धंति तजहा महारम्भयाए, महा परिग्गहाए
पंचिंदिय वहेण कुण माहारेण

नाम से बुलाये जाते हैं, जैसे चकोतरा फल, और चकोतरा नाम का एक पंखी भी होता है और एक गलर नाम का फल और गलर नामसे पंखी भी होता है, जिसको गुर सल भी कहते हैं, और पंजाब देश में शारक भी बोलते हैं. और मैना का साग भी होता है और मेना नाम का एक पखी भी होता है और सोया का साग भी होता है, और सोया नाम का पखी भी होता है, जिस को तोत्ता भी कहते हैं. और मारवाड़ देश में चील का साग होता है, और चील नाम का पखी भी होता है, जिसको पजाब मे इलभी कहते हैं और म्यानदाव में मकी के सिट्टे को कुकड़ी भी कहते हैं, और पंजाब देश में कुकड़ी मुरगी को कहते हैं और गाओजवान वनस्पति औषधी, और गाओजवान, अर्थात् गौ की जिन्हा ऐसे २ भाषाओं के बहुत नाम से भेद हैं, जैसे कई गावों के लोग गाजर में जो

वहुत प्रकार के फलों के नाम है, यथा " ,
गठिया वहु वीयाए" अर्थात् एक ,
(एक हड्डी) वाले फल, अर्थात् एक गुठली
वाले फल, ऐसे ही वहु वीयाये, वहोत वीज
वाले फल, जिस में वहुत गुठली होवें, वह
आवला भी कहा है, (१) पुत्र, जीव, वाधव,
जीवग, ऐरावन, विल्ली, वराली, मासवल्ली,
मजार, असव कर्णी, सिंहकर्णी आदिक, और
वेदागी के पुस्तक अभिनव निघण्टु आदिक
में वहुत प्रकार के जानवरों के नाम से वन-
स्पति फल ओषधियों के नाम दर्ज हैं, क्यो कि
प्राकृत विद्या अर्ध मागधी भाषा में है, (१)
संस्कृता (२) प्राकृता (३) अपभ्रशा,
(४) पैशाचिका (५) शूरसेनी (६) मागधी,
यह ६ भाषाओं के नाम हैं, सो इस में अनेक
देशों की गर्भित भाषा है, और देशीय भाषा
कई देखने में भी आती हैं, कि कई फलों के
वा शाक आदि के नाम पखी आदिकों के

नाम से बुलाये जाते हैं, जैसे चकोतरा फल,
और चकोतरा नाम का एक पंखी भी होता
है और एक गलर नाम का फल और गलर
नामसे पंखी भी होता है, जिसको गुर सल
भी कहते हैं, और पंजाब देश में शारक भी
बोलते हैं. और मैना का साग भी होता है
और मेना नाम का एक पखी भी होता है
और सोया का साग भी होता है, और सोया
नाम का पंखी भी होता है, जिस को तोत्ता
भी कहते हैं और मारवाड़ देश में चील का
साग होता है, और चील नाम का पखी भी
होता है, जिसको पजाब मे इलभी कहते हैं
और म्यानदाव में मक्की के सिट्टे को कुकड़ी
भी कहते हैं, और पंजाब देश में कुकड़ी मु-
रगी को कहते हैं और गाओजवान वन-
स्पति औषधी, और गाओजवान, अर्थात् गो
की जिव्हा ऐसे २ भाषाओं के वहुत नाम से
भेद हैं, जैसे कई गावों के लोग गाजर में जो

काष्ठ सा होता है उसे गाजर की हड्डी ०
हैं, इति और ज्ञाताजी में जो शेलकजी ने
मद्य मास सहित आहार लिया कहा हो सो
वह शेलकजी रोग कर के संयुक्त थे, ता ते
मधु नाम यहा मदिरा का नहीं समझना, मधु
नाम फलों का मधु अर्थात् अर्क और मास
नाम सें पूर्वोक्त फलोंका दल अर्थात् कोलापाक
वजौरह पाक, मसलन मुरब्बा और नेमजी
की वरात के लिये पशु घेरे कहते हो, सो वह
यादव वशीय राजा क्षत्रिय वर्णमें थे उनमें कई
एक जैन मतावलम्बी भी थे, और कई भिन्न
२ मतानुयायी थे, कई प्रवृत्ति मार्ग में चलने
वाले और कई निवृत्ति मार्ग में थे, उन-
का कहना ही क्या ?परन्तु श्री जैन सूत्रों
में श्री जैनेन्द्र देव की आज्ञा मास भ-
क्षण में कदापि नहीं हो सकती है, क्यों कि
जिन वाणी अर्थात जिन आज्ञा का नाम प्र-
श्नव्याकरण सूत्र' के प्रथम सम्बर द्वार में

अहिंसा भगवती श्री जीवदया ऐसा लिखा है हा! कहीं किसी टीकाकारने गपोभा लगा दिया हो तो हमे खबर नहीं हम लोग तो सूत्र से और सम्बन्ध से मिलता हुआ टीका टब्बा मानते हैं जो मूल सूत्र के अभिप्राय को धक्का देनेवाला ग्रमोग्रम अर्थ हो, उसे नहीं मानते हैं यथा पद्मपुराण में शलाका ग्रथानुसार प्रसग आता है कि वसुराजा के समय में वेद पाठियों की शास्त्रार्थ में चर्चा हुई है एक तो कहता था कि वेद में यज्ञाधिकार के विषय में अज होम करना लिखा है, सो अज नाम बकरे का है, सो बकरे का हवन होना चाहिये दूसरा बोला, कि अज नाम पुराणे जौं का है, सो जौं का हवन होना चाहिये, अब कहो श्रोता जनों! कौनसा कथन प्रमाण किया जावें? वेद पर निश्चय करें तब तो उस शब्द के दोनों ही अर्थ सत्य हैं बस, अब क्या तो सम्बध अर्थ पर और क्या

अपनी माति पर निश्चय होगा, क्यों कि व !
दया, क्षमा, आदि क्रिया अर्थात् आर्य्य धर्म
का सम्बध चल रहा होगा तो बकरे का क्या
काम? क्यों कि "अहिंसापरमोधर्म्म" इस प्रकार
के मत्रों को धक्का लगेगा वहा तो अज मेघ
शब्द का अर्थ पुराणे जौं का ही होना चा-
हिये. यदि वहा हिंसा आदि क्रिया अर्थात्
अनार्य्य (बूचड़खाने) का सम्बन्ध चल रहा
होगा तो अज शब्द का अर्थ बकरे का ही
सम्भव होगा, अथवा पाठक की मति हिंसा
में तथा विषयानन्द में प्रबल होगी तो अज
शब्द का अर्थ बकरा है, ऐसे ही प्रमाण
करेगा, और यदि पाठक की मति दया में
तथा आत्मानंद में प्रबल होगी तो अज
नाम जौं का ही प्रमाण करेगा, क्यों कि
'मतेतिमत' हे बुद्धिमानों! सुसग के और
सत्य शास्त्र के आधार से मतिको निर्मल
करना चाहिये ऐसे ही गोमेध सो गो नाम

गौ का ज्ञी है और गौ नाम इन्द्रियों का ज्ञी है अब किसका होम होना चाहिये ? परन्तु पूर्वोक्त दयावान् को तो गो शब्द का अर्थ इन्द्रियों का ही प्रमाण होगा, यथा 'इन्द्रियाणि पशु कृत्वा वेदींकृत्वा तपोमयीम्' इति बचनात् इस प्रकार से शास्त्रों में वहुत से शब्द ऐसे होते हैं कि जिन के अनेक २ अर्थ प्रतीत होते हैं परन्तु सम्बध से और धर्म से मिलता अर्थ प्रमाणिक होता है हा ! जिस शब्द का एक ही अर्थ हो, दूसरा हो हो नहीं, तो वहा वैसा ही बिचार लेना चाहिये.

॥ बारवा प्रश्न ॥

पृच्छक —अजी ! हमारी बुद्धि तो चकित (हैरान) है, कि मत तो वहुत हैं, परन्तु एक दूसरे में ज्नेद पाया जाता है तो फिर किसको सत्य समझा जावे ?

उत्तर —जिसमें मुख्य धर्म पांच नियम हों – (१) दया, (२) सत्य, (३) दत्य, (४)

ब्रह्मचर्य्य, (५) निर्ममता

प्रश्न —यह तो सब ही मतों में मानते हैं, फिर भेद क्यों ?

उत्तर—अरे भाई! भेदों का सार यह है कि अच्छी बात के तो सब अच्छी ही कहेंगे, बुरी कोई भी नहीं कह शकता

दोहा

नीकी को नीकी कहे, फीकी कहे न को,
नीकी को फीकी कहे, सोइ मूर्ख हो

परन्तु अच्छी करनी कठिन है जैसे कि म्लेच्छ लोग भी कहते हैं कि हमारे कुरान शरीफ में अव्वल ही ऐसा लिखा है— "बिसम अल्ला हल रहमान उल रहीम" अर्थ —शूरू अल्ला के नाम से जो निहायत रहमदील मेहरबान है, हमाइल शरीफ मतर-जम देहली में छपी सन् १३१६ हिजरी में परन्तु जब पशुओं की तरफ़तों की गर्दन अ-लग कर देते हैं तब (रहमान और रहीम

कहां जाता है? खैर, यह तो बेचारे अनार्य्य हैं; परन्तु जो आर्य्य लोग हैं उनमें से भी सब के सब अपने नियमों पर नहीं चलते. बस, जो कहते हैं और करते नहीं उनका मत असत्य है, यथा 'राजनीति' में कहा है की —

परोपदेशे कुशला दृश्यन्ते बहवो नरा ।
स्वभावमनुवर्त्तन्ते सहस्रेष्वपि दुर्लभ ॥

अर्थ —बहुत से पुरुष दूसरों को उपदेश करने में तो चतुर होते हैं और स्वयं कुछ नहीं कर सकते, और जो अपने कथन के अनुसार व्यवहार करने वाला हो वह तो हजारो में भी दुर्लभ है

और जो कहते भी हैं और करते भी हैं उनका मत सत्य है यथा 'राजनीति' में कहा है कि,—

पाठक पाठकश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिंतका ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा य क्रियावान्सपण्डित ॥

अर्थः—पढनेवाला और पढाने वाला और

जो कोई और भी शास्त्र का अभ्यास करने हैं वे सब केवल व्यसनी और मूर्ख हैं, जो सत्क्रिया वाला पुरुष हो वही पंडित कहलाता है.

प्रश्न—जो कहते भी हैं और करते हैं वह मत कौनसा है ?

उत्तर—इस विषय में मुझको कुछ वसिफी तो मिल ही नहीं गई है, जो मेरे कहे मत को सब लोग स्विकार कर लेंगे तो अपनी बुद्धि की आखो से देख लीजि और उद्यम कर के अन्वेषण कर (ढुंढ) ले कि किस२ मतों के साधुओं के और उनके वकों के क्या२ नियम हैं, और वह उन नियमो पर चलते हैं वा नहीं और उनकी तीत और चलन कैसे हैं "हाथकङ्गन को आ रसी क्या?" अब देखिये, कि सिवाय जैनिये और कुछ एक दक्षिणी वैष्णवों के, औ सब प्राय मधु मांस की चाट करते हैं अर्था

जैनी कहाते हुए लाखों में से शायद एक दो मांसाहारी हो परन्तु जैन से बाहिर और मत अनुयायी लाखों में से शायद दस नहीं खाते होंगे क्यों कि हम देखते हैं कि आज कल के समय में कागज और स्याही के यंत्रालय (छापेखाने) के प्रभाव से बहुत खर्च हो रहा है अर्थात् हरएक मत के धर्मशास्त्र छप छप कर प्रकट हो रहे हैं. तिस पर भी कसाईयों और कलालों की दुकानो की तरक्की ही देखी जाती है. हाय! अफसोस! बस, इसका यही कारण है कि कहते हैं परन्तु करते नहीं., अर्थात् 'अहिंसा परमो धर्म ' इत्यादिक वाक्य केवल मुख से पुकारते ही रहते हैं, परन्तु अहिंसा अर्थात् दया पालने की युक्तियें नहीं जानते. जाने कहां से ? विना जीव अजीव के भेद जानने वाले दया धर्मी कनककामिनी के त्यागी साधु–सती के कौन बतावे? यह तो वह, कहावत है:—

" रज्जव बेग्न सारका, ऊपर
सार; गृहस्थी के गृहस्थी गुरु कैसे उतरें.

प्रश्न—जलाजी, तुमारी बुद्धि के अनु
सार यह आर्य्यसमाज नाम से जो नया मत
निकला है सो कैसा है ? क्यों कि इनके जी
तुम्हारी जान्ति दया धर्म मानते हैं, और म
धुमास का सेवन करना जी निषेध करते हैं
और थोरे ही काल में कई लाखों पुरुष 'आ
रिया' कहाने लग परे हैं

उत्तर —कैसा क्या ? यह दयानन्दजी
ने ब्राह्मणों से विमुख हो कर 'सत्यार्थ प्रकाश
नाम से पुस्तक, जिसमें पुराणादि ग्रंथो के
दोष प्रकट किये, और अन्य मतों की निन्दा
आदि इकट्ठी करश के बनाया, जिसको प्र
त्येक स्थान स्कूलों में पढाने की अक्लमन्दी
को, क्यों कि कच्चे वरतन में जैसी वस्तु जरो
उसकी गन्धि (बू) हो जाती है अर्थात् ब-
चपन से जैसे पढाया जाता है, वैसे ही

(खयाल) चित्त में दृढ हो जाता है. यही वि-
शेष कर मत फैलने का कारण है. परन्तु यह
दोष तुमारे लोगों का ही है. क्यों कि अपने
बच्चों को न तो प्रथम अपनी मातृभाषा अ-
र्थात् संस्कृत विद्या वा हिन्दी पढाते हो, और
नाही कुछ धर्म शास्त्र का अभ्यास करवाते
हो. प्रथम ही स्कूलो में अंग्रेजी फारसी आदि
पढने बैठा देते हो देखो स्कूलों के पढे हुए
ही प्राय कर, आर्य्य समाजी देखे जाते हैं
सो इन बेचारों के न तो देव, और न गुरु, न
धर्म, और ना ही कोई शास्त्र का कुच्छ नियम
है क्यों कि इनके ईश्वर को भी विपरीत (बे-
ढग) ही मानते हैं, अर्थात् ईश्वर को कर्त्ता
मानने से पूर्वोक्त लिखे प्रमाण से चार दोष
प्राप्त कराते हैं और न इनके कोई गुरु अ-
र्थात् साधुवृत्ति का कोई नियम है जो चाहे
सो उपदेशक बन बैठता है और गलीश में
पुस्तक हाथ लिये मनमाने गपौड़े हाकता है

" रज्जव वेग सारका, ऊपर

सार; गृहस्थी के गृहस्थी गुरु कैसे उतरें पार॥

प्रश्न—बाबाजी, तुमारी बुद्धि के अनुसार यह आर्य्यसमाज नाम से जो नया मत निकला है सो कैसा है? क्यों कि इनके भी तुम्हारी भान्ति दया धर्म मानते हैं, और मधुमास का सेवन करना भी निषेध करते हैं, और थोड़े ही काल में कई लाखों पुरुष 'आरिया' कहाने लग पड़े हैं

उत्तर—कैसा क्या? यह दयानन्दजी ने ब्राह्मणों से विमुख हो कर 'सत्यार्थ प्रकाश' नाम का पुस्तक, जिसमें पुराणादि ग्रंथो के दोष प्रकट किये, और अन्य मतों की निन्दा आदि इकठी करर के बनाया, जिसको प्रत्येक स्थान स्कूलों में पढाने की अकलमन्दी की, क्यों कि कच्चे बरतन में जैसी वस्तु भरो उसकी गन्धि (बू) हो जाती है अर्थात् बचपन से जैसे पढाया जाता है, वैसे ही संस्कार

वलम्बी खाट को झाड़२ कर खटमलों (माकु-
नुओं) को पैरों से मल देते हैं उधर तीर्थ-
स्नान करें, उधर बैठ कर जू लीख मारें, उधर
गौ नैंस आदि पशुओं की चिचड़ी तोड़२ कर
गोवर में दवा दें, वा अंगारों में जलायें, उधर
भिड़ अर्थात् धमोड़ी वा तैतऊं (डेमुओंके)
छत्ते में आग लगायें, उधर पुराणीबाड़ में वा-
कूड़े में आग लगाये, उधर सर्प, विच्छू को
मारने दौड़े, बैल को वधिया करावें, गौबाल
विछोडें, अर्थात् बछड़ों को कसाई के पास
वेचें, इतना ही नहीं वल्कि यज्ञादिकों में प-
शुओं का वध-(करना)-भी मानते हैं. इनोंके
यजुर्वेद-मनुस्मृति आदिक ग्रंथो में लिखा हुआ
भी है और समाजियों में से मास भी खाते
हैं इनके अब मत भी दो हो गये हैं. एक
मास पार्टी मास खाना योग्य कहते हैं. और
एक घासपार्टी मास खाना अयोग्य कहते हैं.

परन्तु, अहिंसा भगवती श्रीजीवदया,

कि स्त्रियों का पुनर्विवाह हो जाना चाहिये अर्थात् विधवा स्त्री को फिर विवाह दो, क्यों कि पुराणों में तो, हमने भी लिख देखा है कि पिछले समय में ब्राह्मणों के कथन से विधवा स्त्री का देवरादिकों के साथ करेवा हो जाता था, परन्तु पुनर्विवाह नहीं होता था, और अब वर्त्तमान काल में भी कईएक जातियों में ऐसे ही देखने में आता है; इत्यादि और न कुछ हिंसा, मिथ्यादि त्याग रूप और जप तप, वैराग्य आदि धर्म है क्यों कि यह जो कहते हैं कि हमारे वेदों में लिखा है, " अहिंसापरं-मोधर्म माहिंस्या सर्व भूतानि " अर्थात् कीटिका से कुञ्जर (हस्ती) पर्य्यन्त किसी जीव को मत सताओ परन्तु पूर्वोक्त लेख साधु संगति के अभाव से दया की युक्तियें नहीं जानते हैं क्यों कि हम बहुलतासे ग्राम और नगरों में देखते हैं क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, क्या समाजी, क्या अन्य मता

गाथा.

खामेमी सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमंतु मे
मित्ति मे सव्वे भूएसु वेरं मज्झं न केणयी॥

परन्तु दया तो पूर्वोक्त अनाथ जीवों की ही होती है, जो सर्व प्रकार से लाचार हैं, जिनका कोई सहायक नहीं, और घर भी नहीं, इन्द्रियहीन, बलहीन, वृद्ध अवस्था विकेन्द्रिय, इत्यादि. क्यों कि पशु आदि बड़े जीवों की हिंसा से, तो जैनी आर्य्य आदिक कुलों में पूर्व पुण्योदय से प्रथम ही रुकावट है, उनको तो पूर्वोक्त छोटे२ जन्तुओं की रक्षा का ही उपदेश कर्त्तव्य है, जिससे थोड़े पाप के अधिकारी भी न बनें तो अच्छा है, परन्तु यह समाजी लोग (दयानन्दी) किसी शास्त्र पर भी विश्वास नहीं करते हैं, प्रत्येक मत की, वा प्रत्येक शास्त्र की निन्दा, हुज्जत आदि करने में सर्वदा तत्पर रहते हैं, यथा सम्वत् १९५४ के छपे हुए सत्यार्थ प्रकाश, के बारहवें

तथा 'अहिंसापरमोधर्म' अहिंसाखक्षणम् धर्मः" इस अमृतवाक्य ने जैन मत की मदद से ही जय की पताका ऊंची उठाई है

प्रश्न—अजी! तुम जैनी लोग पशु आदि छोटे२ जीव जन्तुओं की दया तो बहुत कहते हो, वा करते हो, परन्तु मनुष्य की दया कम कहते वा करते हो

जैनी—वाह जी वाह! खूब कही, अरे भोले! मनुष्य मात्र तो हमारे भाई हैं उनकी दया क्या, उनसे तो भाईयों वाली भाजी है, जो कहेंगे जी, कहायेंगे जी, और जो कहेंगे मर कहायेंगे मर यदि किसीको नवल (गरीब) जान कर सतावेंगे वह जुल्म अर्थात् अन्याय में शामिल है, सो वर्जित है इनसे तो मित्रता रखनी, मीठा बोलना, यथा—

गुणवन्त नर को वन्दना, अवगुण देख मदहस्त,
देख करुणा करे मंत्री भाव समस्त

अवशक में लिखा है,

कसाइया को पापी कहना यह क्या ? क्यों कि जीव तो अजर अमर है, तो कसाईयो को पाप क्यों ? और दयावानों को धर्म क्यों ? और दयानन्दजी को रसोईये ने विष दे कर मार दिया तो उसे भी पाप नहीं लगा होगा ? क्यों कि दयानन्दजी का जीव भी तो अजर अमर ही होगा ऐसे ही लेख राम को मुसलमान ने छुरी से मार दिया तो उसको भी दोष न हुआ होगा ? अपितु हुआ, क्यों नहीं ? यह केवल तुमारी बुद्धि की ही विकलता है

शिष्य —मुझे भी सन्देह हुआ कि अगर जीव अमर है तो फिर जीव घात (हिंसा) को पाप क्यों कहते हो ?

गुरू —इस परमार्थ को कोई ज्ञानी दयाशील ही समझते हैं, नतु ऐसे पूर्वोक्त बुद्धिवाले, दयार कहके फिर हिंसा ही में तत्पर रहते हैं जैसे गीता में लिखा है, कि अर्जुनजी ने कौरव दल में सज्जनों की दया दिख-

समुल्लास और ४८० पृष्ठ पर जैनी ।ु
के लक्षण लिखे हैं –
स रजोहरण भैक्ष्य, भुजोलुञ्चितमूर्धजा श्वेता-
म्बरा क्षमाशीला, निस्संगा जैन साधव ॥
और ४८१ पृष्ठ की ग्यारहवीं पक्ति में
लिखा है, कि यति आदिक भी जब पुस्तक
वाचते हैं तब मुख पर पट्टी बाध लेते हैं, और
फिर उसीकी पन्द्रहवीं पक्ति में लिखा है कि
यह उल्लिखत बात विद्या और प्रमाण से अ-
युक्त है, क्यों कि जीव तो अजर अमर है,
फिर वह मुख की बाफ से कभी नहीं मर स-
कते, इति
जैनी —वाह जी वाह ! बस इसी कर्त्त-
व्य पर आर्य्य अर्थात् दयाधर्मी बन बैठे हो?
भला यदि बाफ से नहीं मर सकते, तो क्या
तलवार से मर सकते हैं ? अपितु नहीं तो
फिर खड्गादि द्वारा मारने में भी दोष नहीं हो-
ना चाहिये परन्तु "अहिंसा परमो धर्म." और

ताजी को आद्योपान्त बाञ्च कर देख लो, परमार्थ नास्तिकों वाला ही निकलेगा, कि आत्मा आकाशवत् है परन्तु पूर्वोक्त यथार्थ ज्ञान तो यह है कि यदि जीव अमर है तो जी प्राणों ही के आधार से रहता है, यथा जैन शास्त्रों में जीवहिंसा का नाम 'प्राणातिपात' कहा है. प्राणाना अतिपातः अर्थात् प्राणों का लूट लेना, इसीका नाम जीवहिंसा कहा है अर्थात् प्राणों से न्यारा होने का नाम ही मरना है, यथा दृष्टान्त –

पुरुष घर के आधार रहता है. जब घर को जीत टूट जाय तो घर वाले की बाहू तो नहीं टूट गई, परन्तु घरवाले को कष्ट तो मानना ही पमेगा, कि मेरे घर की जीत गिर गई, मेरे काम में हर्ज है, इसको चिनो, तथा घर गिर पमा, वा किसीने ढा दिया, वा फूंक दिया, तो घरके ढैने से वा फूक दो जाने से क्या घर वाला मर जाता है? अपितु नहीं,

में था कर अपनें शस्त्र छोम् दिये, तब
कृष्णाजी ने कहा, कि वीर पुरुषों का रण
भुमि में आ कर शास्त्र का त्याग करना ध
नहीं हैं अर्जुनजी बोले कि, भगवन्!
कायर नहीं हू मुझे तो अपने इन स्वजन
की तर्फ देख कर दया आती है, और इनक
वध करना मेरे लिये महान् दोषकार है. त
श्री कृष्णजी कहते भये कि हे अर्जुन! इनके
मारने में तुझे कोई दोष नहीं हैं क्यों कि यह
आत्मा तो अमर है यथा:—

श्लोक

नैंन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैंनं दहति पावक ।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ।२३।

इसी वर्णन में गीता समाप्त कर दी.
जिसका सारांश यह निकला कि अर्जुन का
चित्त जीवहिंसा की घृणा से रहित हुआ
और खूब तीक्ष्ण तेग चलाई और कौरव कुल
को क्षय कर दिया. तुम अच्छी तरह से गी

खुले जाजरूर! अपितु सत्य ही है, कि नि-
न्दक जनों के हृदय और मुख जाजरूर सदृश
ही होते हैं, नतु यों लिखना चाहिये था कि
सार पदार्थयुक्त भाजन का मुख बाधा जाता
है, खाली का खुला रहता है अर्थात् केसर
कस्तूरी के डिब्बे वा घृत खांड आदि के भा-
जन के मुख बन्द किये जाते हैं और असार
आदिक के भाजन खुले ही पडे
रहते हैं इन समाजियों में एक और भी वि-
शेषता है कि प्रत्येक गुणी (विद्वान्) से वि-
वाद करना, विनय नहीं, भक्ति नहीं, अर्थात्
जो बात आपको तो न आती हो और उसी
पर झट प्रश्न कर देना, वह यदि पूछे कि तुम
भी जानते हो, तो कहना कि हम तो पूछने
को आये हैं, फिर वह ज्ञान की और गुण
की बात कहें तो उस गुण रूपी दूध को अ-
पने कांजी के वर्तन में डाल कर खट्टा कर के
फाड देना, अर्थात् और ही तरह समझ लेना,

घर से निकल जागता है, परन्तु घरके ढै
वा दग्ध होने का दुःख तो बहुत ही भा।
है इसी प्रकार से जीव के अमर होने प
भी इसकी देह से अलग करने में बड़ा पाप
होता है. चाहे वाफ से हो चाहे तलवार से
हो ताते जीवरक्षा करना सदैव सब को योग्य
है और पञ्चम वार सं १९५४ के छपे हुए
'सत्यार्थ प्रकाश' के ४८२ पृष्ठ की १४ वीं पंक्ति
में लिखा है कि पट्टी बाधने से दुर्गन्धि भी अ-
धिक बढती है, क्यों कि शरीर के भीतर दु-
र्गन्धि भरी है, शरीर से वायु दुर्गन्धियुक्त प्र-
त्यक्ष है, रोका जावे तो दुर्गन्धि भी अधिक
बढ जावे, जैसा कि बन्ध जाजरूर अधिक
दुर्गन्धयुक्त और खुला हुआ न्युन दुर्गन्धियुक्त
होता है अब देखिये, जैनियों की निन्दा के
लिये अपने मुख भी मूढों ने जाजरूर (विष्ठा
के स्थान) बनाये ! यथा पट्टी बाधनेवालों के
मुख बंध जाजरूर, और खुले मुखवालों के

का स्थान करते हैं. (२) ब्राह्मण वेदानुकूल क्रियापूर्वक श्री सीतारामजी की मूर्तिका पूजन करते हैं. (३) शैव वेदानुकूल श्रीशंकरजी का लिङ्ग अर्थात् पिण्डी का पूजन करते हैं. और यह पूर्वोक्त मतानुयायी देव और देवलोक स्वर्ग वा नर्क आदि स्थान का होना वेद प्रमाण से सिद्ध करते हैं और मुक्ति से फिर लौट कर नहीं आना कहते हैं. (४) परमहंस वेदानुकूल मूर्त्तिपूजन आदि का खण्डन करते हैं और एक ब्रह्म सर्वव्यापी आकाशवत जड़ रूप मानते हैं और परमेश्वर, जीव, लोक, परलोक, बंध, मोक्ष आदिक की नास्ति कहते हैं. (५) मनुजी वेदानुकूल श्राद्धादि में मास, मदिरा आदि का पितृदान करना 'मनुस्मृति' में लिखते हैं, जिस स्मृति के दयानन्दजी ने भी 'सत्यार्थ प्रकाश' नामके अपने रचे हुए पुस्तक में बहुत से प्रमाण दिये हैं फिर लोगों की ओर से पराभव और घृणादृष्टि

अर्थात् अपनी कुतर्कें मिला कर विषमपने
हणा कर देना, और जो कोई अवगुण रूप
प्रतीत पड़े तो उस छिद्र को पकड़ कर कुछ
अपने घर से युक्तियें हुजत पन की मिला
कर उन्हीं के शत्रु रूप हो कर निन्दा अपवा
देनी क्यों कि इन लोगों की बनाई हुई पु
स्तकें भी हर एक मत की निन्दा आदि से
भरी हुई हैं। न कुच्छ त्याग, वैराग्यादि आत्मा
के उद्धार करने की विधि से, जैसे 'सत्यार्थप्र
काश' महाभारत लेखराम कृत् आदिक और
नें यह वेदों को ही मानते हैं, क्यों कि (१) वेदों
के मानने वाले ही वैष्णव हैं, (२) वेदों ही के
मानने वाले ब्राह्मण हैं, (३) शैव, (४) परम
हंसादिक वेदान्ती, (५) मनुजी, (६) शंकरा-
चार्य्य, (७) वाम मार्गी, (८) दयानन्द सर-
स्वती आदिक अब वार्ते समझने की है, (१)
वैष्णव तो वेदानुकूल श्रीर्द आदि गंगा पहोये
आदिक का स्नान श्री राधा कृष्णजी की मूर्ति

तथा 'अनुयोगद्वार' में वेद अज्ञानियों के ब-
नाये हुए लिखे हैं. (११) आत्माराम (आ-
नन्दविजय) सम्वेगी अपने बनाये हुए
'अज्ञानतिमिर भास्कर' ग्रंथ के प्रथम
खण्ड के १५५ पृष्ठ में वेदों को निर्दय मां-
साहारी कामियों के बनाये हुए लिखता है.
(१२) दयानन्द सरस्वती वेदानुकूल श्रा-
द्धादि क्रिया का और श्री गंगादि तीर्थस्नान
का और मूर्तिपूजन का सन् १८७५ के
छपे हुए 'सत्यार्थप्रकाश' में उपदेश करते
हैं और पीछे के छपे हुए में पूर्वोक्त मांसा-
दि भक्षण का निषेध करते हैं, और एक२
स्त्री को एक विवाहित और दस नियोग,
अर्थात् करेवे करने कहते हैं और मुक्ति
से पुनरावृत्ति (वापिस लौट आना) भी
कहते हैं, अब क्या विद्वान् पुरूषों के चित्त
में यह विचार नहीं उत्पन्न हुआ होगा कि
न जाने वेदों में कौनसी बात है और वेदा-

के होने के कारण दयानन्दियों ने अयुक्त जान कर कितने एक उस पुस्तक में से निकाल भी दिये हैं (६) श्री शकराचार्य्य, वेदानुकूल वैदिक हिंसा को निर्दोष कहते हैं अर्थात् अश्वमेधादिक यज्ञ में पशुओं का वध करना योग्य कहते हैं जैसे, पूर्वकाल में जैनी और बौद्धों ने हिंसा की निन्दा करी, तो उनके साथ बहुत क्लेश किया, उनके शास्त्र भी ख्वो दिये और जला दिये (७) वामी, वेदानुकूल वाममार्ग का पालन करते हैं (८) अनाचक वेदों को धूर्तों के बनाये हुए कहते हैं (९) मैक्समूलर पण्डित डाक्टर वेदों को अज्ञानी पुरुषों के बचन कहते हैं (१०) जैन सूत्र श्री 'उत्तराध्ययन जी' २५ वें अध्ययन में जयघोष ब्राह्मण अपने भाई विजयघोष से कहते थे —

"सव्वे वेया पसुबन्धा" अर्थात् वेदों में तो पशुबध करना लिखा है और 'नन्दीजी'

दिक ग्रंथों से उक्त कथन प्रतीत हो जाता है."

॥ १३ वा प्रश्न ॥

आरिया.—तुम्हारे जैन शास्रो में मनुष्य आदिकों की आयु (अवगहना) आदि बहुतर लम्बी कही है सो यह सत्य है, वा गप्प है?

जैनीः—जो सूत्रों में लिखा है सो सब सत्य है, क्यों कि यह गणधर कृत सूत्र त्रिकालदर्शी महापुरुषों के कहे हैं. और अतीत, अनागत, वर्त्तमानकाल अनादि प्रवाह रूप अनन्त है, किसी काल में सर्पिणी उत्सर्पिणी काल के प्रयोग से बल, धन, आयु, अवगहना आदिक का चढाव होता है, और कभी उतराव होता है, अर्थात् हमारे वृद्धों के समय में सौ२ वर्ष की प्रत्युत सौ से भी अधिक आयुवाले पुरुष प्राय दृष्टिगोचर हुआ करते थे, और अब पचास वर्ष की आयु होते ही कुटुम्बी जन मृत्यु के चिन्तक

नुकूल कौन कहते हैं? वास्तव में तो यह
है कि वेदों का पाठी तो इन लोगों में कोई
शायद ही हो परन्तु प्रत्येक वेदों के अज्ञ
(नावाकिफ) वेदों के नाम का सहारा ले कर
कोई उपनिषद् स्मृति आदिकों में से देशां-
श कहीं२ का ग्रहण कर के मनमानी कल्पना
करर के वैदिक बन रहे हैं, और आज
कल भी देखा जाता है कि यह दयानंदी
लोग दयानद के कथन पर भी विश्वस्त नहीं
हैं; क्यों कि दयानन्द वाले 'सत्यार्थ प्रकाश'
के प्रथम बारह समुल्लास थे इन्हों ने उसमें
से आगे पीछे कर करा कर कुछ और अरु
गम सेम्गम मिला कर चौदह समुल्लास कर
दिये हैं, और अन्त में वेदान्त अर्थात्
इन सब वेदानुकूल मतों की नदियें ना-
स्तिकमत समुद्र में जा मिलती हैं इनही
वेदानुयायीयों की बनायी हुई गीताजी
वसिष्ठ विचारसागर आनन्दामृतवर्षिणी आ-

होता है. और ग्रंथकारो ने ग्रंथो में सूत्रों से विरुद्ध न्यूनाधिक बातें लिख धरी हैं यथा वेदानुयायी सूत आदिकों नें वेद विरुद्ध पुराणों में कई गपौरे कथा आदिक लिख धरे हैं उ-नही पुराणों के गपौरों के प्रयोग से कुजात वादियों से पराजय हो कर बहुत से ब्राह्मण और वैष्णवों नें अपने ब्राह्मण धर्म्म को गेर कर अपने आपको अर्थात् ब्राह्मणों को पोप कहाने लग गये हैं ऐसे ही कई एक जैनी लोग जैन सूत्रों के अङ्ग ग्रन्थों के गपौडों के प्रयोग से पराजय हो कर अपने सत्य धर्म से भ्रष्ट हो गये हैं

आरिया —अजी, हमारे दयानन्द कृत सम्वत् १९५४ के छपे हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' के बारहवें समुल्लास के ४५३ पृष्ठ में लिखा है कि जैनियों के 'रत्नसार ग्रथ' के १४८ पृष्ठ में ऐसा लिखा है कि, जैनियों का योजन १०000 दस हजार कोस का होता है. ऐसे

हो जाते हैं और अब अंग्रेज बहादुर
अमलदारी में रेल आदि कई प्रकार
कलें चल रही हैं, जो इनका वृत्तान्त
बर्ष से पहिले हमारे बर्मों के समय में
दूरदर्शी ज्ञानी कथन करता कि इस
की रेल आदिक चलेंगी, तो तुम
लघुदृष्टिवाले कब मानते? और आगे को
किसी समय में रेल आदि
प्रचार नहीं रहेगा तो कोई इस
के इतिहास में रेल का कथन
तो प्रत्यक्ष प्रमाण—वर्त्तमान काल
बात को मानने वाले मूढ जन किस प्रकार
मानेंगे? दीर्घकाल की बातों पर तो दीर्घदृष्टि
वाले ही निगाह दौड़ाते हैं अर्थात् कूंए का
मेंडक समुद्र की सार क्या जाने? और कुछ
एक बारह वर्ष के अकाल आदिक में कई
सूत्रों के विछेद हो जाने से गणन विद्या के
हिसाब में भी भाषा का अन्तर हुआ प्रतीत

कोई मतान्तरो के ग्रथ आदि देखे भी होंगे तो गुरुगम्यता के विना, और मतपक्ष के नशे से बुद्धि में नहीं आये और इस ही पृष्ठ की सोलहवीं पक्ति में दयानन्द उपहास रूप लेख लिखता है कि अठतालीस कोस की जू जैनियों के शरीर में ही पडती होगी हमारें भाग्य में कहा ? सो हे भाई ! जैनियों के तो अठतालीस कोस की जू स्वप्नान्तर में भी प्राप्त नहीं हुई और नाही जैनियों के तीर्थकरों ने कभी देखी, और ना जैन शास्त्रों में कहीं लिखी है हा, अलबत्ता दयानन्दजी का ईश्वर तो कर्त्तमकर्त्ता था, यदि वह अठतालीस कोस की जू बना कर दयानन्द को और उसके अनुयायियों को बखश देता तो इसमें सन्देह नहीं था वाहवा ! दयानन्दजी ! तुम सरीखा निर्बुद्धि झूठे कलकित वाक्य वोलने वाला और कौन होगा ? परन्तु बडे शोक की बात है कि ऐसे

चार हजार कोस का शरीर होता है. और इन्द्रिय शंख, कौभी, जू आदिक का शरीर अठतालीस कोस का स्थूल होता है. यह गप्प है वा सत्य?

जैनी—यह गप्प है, क्योंकि जैन शास्त्र में दसहजार कोस का योजन और अठतालीस कोस की मोटी जू कहीं भी नहीं लिखी है जैन सूत्र 'समवायाग', 'अनुयोग द्वार' में एक जौं की मोटाई में आठ यूका आवे इतना प्रमाण लिखा है परन्तु यह लेख तो केवल दयानन्दजी की मूर्खता का सूचक है क्यों कि हम लोग तो जानते थे कि दयानन्दजी ने जो जो मतमतान्तरो की है उनके शास्त्रों के प्रमाण दे दे कर सो ठीक ही होवेंगी, परन्तु तुम्हारे कहने से और 'सत्यार्थ प्रकाश' के देखने से प्रतीत हुआ कि आप सूत्र कोई नहीं देखे होंगे, केवल सुने-सुनाये ही द्वेष के प्रयोग से गोले गरकाये हैं. यदि

कोई मतान्तरों के ग्रथ आदि देखे जी होंगे तो गुरुगम्यता के विना, और मतपक्ष के नशे से बुद्धि में नहीं आये और इस ही पृष्ठ की सोलहवीं पक्ति में दयानन्द उपहास रूप लेख लिखता है कि अठतालीस कोस की जू जैनियों के शरीर में ही पम्ती होगी हमारें जाग्य में कहा? सो हे जाई! जैनियों के तो अठतालीस कोस की जू स्वप्नान्तर में जी प्राप्त नहीं हुई और नाही जैनियों के तीर्थंकरों ने कजी देखी, और ना जैन शास्त्रों में कहीं लिखी है हा, अलबत्ता दयानन्दजी का ईश्वर तो कर्त्तमकर्त्ता था, यदि वह अठतालीम कोस की जूं वना कर दयानन्द को और उसके अनुयायियों को वखश देता तो इसमें सन्देह नहीं था वाहवा! दयानन्दजी! तुम सरीखा निर्बुद्धि झूठे कलकित वाक्य वोलने वाला और कौन होगा? परन्तु वमे शोक की वात है कि ऐसे

चार हजार कोस का शरीर होता है. और इन्द्रिय शंख, कौमी, जू आदिक का शरीर ठतालीस कोस का स्थूल होता है. यह गप्प है वा सत्य?

जैनी—यह गप्प है, क्योंकि जैन शास्त्रों में दसहजार कोस का योजन और अठतालीस कोस की मोटी जू कहीं भी नहीं लिखी है जैन सूत्र 'समवायाग', 'अनुयोग द्वार' में एक जौं की मोटाई में आठ यूका आवें इतना प्रमाण लिखा है परन्तु यह लेख तो केवल दयानन्दजी की मूर्खता का सूचक है, क्यों कि हम लोग तो जानते थे कि दयानन्दजी ने जो जो मतमतान्तरों की हैं उनके शास्त्रों के प्रमाण दे दे कर सो ठीक ही होवेंगी, परन्तु तुम्हारे कहने से और 'सत्यार्थ प्रकाश' के देखने से प्रतीत हुआ कि आप सूत्र कोई नहीं देखे होंगे, केवल सुने—सुनाये ही द्वेष के प्रयोग से गोले गरमाये हैं यदि

होगी, क्यो कि यह क्रम तो अनादि अनन्त सृष्टि आदि का चला आता है, अब विचार कर देखो, कि यह तुम्हारे मत में मोक्ष (नय्यात) काहे की हुई? यह तो और योनियों की भ्रान्ति अवागमन ही रही परन्तु तुम सीधे यों ही क्यों नहीं कह देते कि मोक्ष कुछ वस्तु ही नहीं है? क्यो कि तुम्हारा दयानन्द भी 'सत्यार्थ प्रकाश'-१९५४ के २५७ पृष्ठ पक्ति १२ में मुक्ति को कारागार अर्थात् कैदखाना लिखता है कि उमर कैद से तो थोड़े काल की कैद, हमारे वाली ही मुक्ति अच्छी है अब देखिये कि जिन्होंने मोक्ष को कारागार समझा है वह क्या धर्म करेंगे? इन नास्तिकों का केवल कथन रूप ही धर्म है यथा वेदों का सार तो यज्ञ है और यज्ञ का सार वायु (हवा) की शुद्धि यथा दशोपनिषद् भाषान्तर पुस्तक स्वामी अच्युतानद कृत छापा मुबई सम्वत् १९५२

मिथ्या लेख रूप पुस्तकों पर श्रद्धा कर२ धर्म के अजान पुरुष कैसे२ आख मीच कर अविद्यासागर में पतित हो रहे है।

॥ १४ वा प्रश्न ॥

आरिया —सर्व मतो का सिद्धान्त मोक्ष है सो तुम्हारे मत में मोक्ष को ही ठीक नहीं माना है

जैनी —किस प्रकार से ?

आरिया —तुम्हारे मुक्त चेतन अर्थात् सिद्ध परमात्मा एक शिला पर बैठे रहते हैं, उमरकैदी की तरह

जैनी —अरे भोले! तुम मोक्ष को क्या जानो ? क्यों कि तुम्हारे नास्तिक मत में तो मोक्ष को मानते ही नहीं हैं, क्यों कि मोक्ष से फिर जन्म होना अर्थात् वार२ मोक्ष में जाना और वापिस आना मानते हो, तब तो तुम्हारे कथनानुसार जीवों को अनन्त वार मोक्ष हुई होगी, और अनन्त वार

होगी, क्यों कि यह क्रम तो अनादि अनन्त सृष्टि आदि का चला आता है, अब विचार कर देखो, कि यह तुम्हारे मत में मोक्ष (नय्यात) काहे की हुई? यह तो और योनियों की भ्रान्ति अवागमन ही रही परन्तु तुम सीधे यों ही क्यों नहीं कह देते कि मोक्ष कुछ वस्तु ही नहीं है? क्यो कि तुम्हारा दयानन्द जी 'सत्यार्थ प्रकाश' १९५४ के २५७ पृष्ठ पंक्ति १२ में मुक्ति को कारागार अर्थात् कैदखाना लिखता है कि उमर कैद से तो थोड़े काल की कैद, हमारे वाली ही मुक्ति अच्छी है अब देखिये कि जिन्होंने मोक्ष को कारागार समझा है वह क्या धर्म करेंगे? इन नास्तिकों का केवल कथन रूप ही धर्म है यथा वेदों का सार तो यज्ञ है और यज्ञ का सार वायु (हवा) की शुद्धि यथा दशोपनिषद् भाषान्तर पुस्तक स्वामी अच्युतानद कृत छापा मुबई सम्वत् १९५२

का उसमें वृहदारण्यकोपनिषद् नाषान्तर प्रथम अध्याय के २३३ पृष्ठ की ८ वी ११ पक्ति में लिखा है, कि अश्वमेध यज्ञ सब यज्ञों में से बमा यज्ञ है, तिसका फल नी संसार ही है, तो अग्निहोत्रादि का तो कहना ही क्या ? बस ना कुछ त्याग, न वैराग्य, न धर्म, न मोक्ष

आरिया —मुक्ति नी तो किसी कर्म ही का फल है सो कर्म अवधि (हद) वाले होते हैं तो फिर कर्म का फल मुक्ति नी अवधि वाली होनी चाहिये

जैनी —हाय ! अफसोस ! देखो, मुक्ति को कर्म का फल मानते हैं ! नला, यह तो बताओ कि मुक्ति कौन से कर्म का फल है ?

आरिया —ज्ञान का, सयम का, तप का, और ब्रह्मचर्य्य का

जैनी —देखो, पदार्थ ज्ञान के अज्ञ (अज्ञान) ज्ञान आदि को कर्म बताते हैं !

आरिया —हम तो सब को कर्म और कर्म का फल ही समझ रहे हैं.

जैनी —तब तो तुम्हें यह भी मानना पड़ेगा कि ईश्वर भी किसी कर्म का फल भोग रहा है, और फिर कर्म हलवाले होने से कर्म फल भोग के ईश्वर से अनीश्वर हो जावेगा और जो अब ईश्वर दण्ड देना, जीवों को सुखी दुःखी करना सृष्टि बनानी, और संहार करना, आदिक नये कर्म करता है, उनका फल आगेको किसी और अवस्था में भोगेगा, क्यों कि भर्तृहरिजी अपने रचे हुए 'नीतिशतक' में भी लिखते हैं —

(श्लोक)

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे।
विष्णुर्येन दशावतार ग्रहणे क्षिप्तो महासंकटे॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटन कारित।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मैनम कर्मणे॥ १६ ॥

का उसमें वृहदारण्यकोपनिषद् भाषान्तर प्रथम अध्याय के २३३ पृष्ठ की ८ वी ११ पंक्ति में लिखा है, कि अश्वमेध यज्ञ सब यज्ञों में से बड़ा यज्ञ है, तिसका फल भी संसार ही है, तो अग्निहोत्रादि का तो कहना ही क्या ? बस ना कुछ त्याग, न वैराग्य, न धर्म, न मोक्ष

आरिया —मुक्ति भी तो किसी कर्म ही का फल है सो कर्म अवधि (हद) वाले होते हैं तो फिर कर्म का फल मुक्ति भी अवधि वाली होनी चाहिये

जैनी —हाय ! अफसोस ! देखो, मुक्ति को कर्म का फल मानते हैं ! भला, यह तो बताओ कि मुक्ति कौन से कर्म का फल है ?

आरिया —ज्ञान का, सयम का, तप का, और ब्रह्मचर्य्य का

जैनी —देखो, पदार्थ ज्ञान के अज्ञ (अज्ञान) ज्ञान आदि को कर्म बताते हैं !

रादरी के रक्षक हो, मेरे पुत्र की आंखें अच्छी
करो तो पञ्च बोले कि भाई! तूं उसका इ-
लाज करवा शाहूकार ने कहा कि मैंने इ-
लाज तो बहुत करवाये है, परन्तु वह अच्छा
नहीं हुआ अब आप लोगों की शरण आ-
या हू तब उन्होने कहा कि हम पञ्चों को तो
बरादरी का झगड़ा तैह करने का अख्ति-
यार है, परन्तु ऐसे कर्मरोग के हटाने में ह-
मारी सामर्थ्य नही है तब वह शाहूकार
लाचार हो कर अदालत में गया. वहा जा
कर दरखास्त की कि आप प्रत्येक का इन-
साफ करके दु:ख दूर करते हो, मेरे पुत्र के
नेत्र भी अच्छे कर दीजिये तब अदालत
ने कहा कि तुम इसको शफाखाने ले कर
किसी डाक्टर से इलाज करवाउ शाहूकार
ने कहा कि मैंने बहुत इलाज करवाया है,
आप ही कुच्छ इनसाफ करो, कि जिससे
इसकी आखें अच्छी हो जावें तब अदा-

अर्थ.–जिस कर्म ने ब्रह्मा को ... की न्याई निरन्तर ब्रह्माण्ड रचने का हेतु बनाया, और विष्णु को वार२ दश अवतार ग्रहण करने के संकट में डाला, और रुद्र को कपाल हाथ में ले कर भिक्षा मागने के कष्ट में रक्खा, और सूर्य को आकाश में नित्य भ्रमण के चक्र में डाला, ऐसे इस कर्म को प्रणाम है। अब इससे सिद्ध हुआ कि ब्रह्मा आदिक सब कर्मों ही के आधीन हैं, और कर्मों के फल भुगताने में कोई भी समर्थ नहीं है यथा दृष्टान्त —किसी एक नगर में एक धनी के घर एक पुत्र उत्पन्न हुआ जब वह पाच वर्ष का हुआ तो कर्म योग उस की आखें विमारी हो कर विगड़ गई, अर्थात् अंध हो गया तव उस साहुकार ने वैद्य वा डाक्टरों से बहुत इलाज करवाये परन्तु अच्छा न हुआ तब वह शाहूकार अपने भाई वा पञ्चों के पास गया, कि तुम पञ्च ब-

जुगताने में राजा की नजीरें देते हैं, उनका कहना कैसा कि मिथ्या, जिस प्रकार से राजा आदिक कर्मों के फलों में दखल नहीं दे सकते उसी प्रकार ईश्वर भी पूर्वोक्त राजा की तरह कर्मों के फल में दखल नहीं दे सकता

आरिया—तुम ही बताओ कि पूर्वोक्त कर्म क्या होते हैं? और ज्ञानादिक क्या होते हैं? और मुक्ति क्या होती है?

जैनी—हा,हां,हम बतावेंगे कर्म तो प-रगुण अर्थात् जड़ गुण, काम क्रोधादिक के प्रभाव से विषयार्थी हो कर हिंसा, मिथ्यादि समारंभ करने से अन्त करण में मल रूप पूर्वोक्त जमा हो जाते हैं, उनका नाम और ज्ञान आदि निज गुण अर्थात् चेतन गुण स्वाध्याय ध्यान आदि अभ्यास कर के अ-नादि अज्ञान का नाश हो कर निज गुण के प्रकाश होनेका नाम है और मुक्ति पूर्वोक्त परगुण अर्थात् कर्म के वध से मुक्ति पाने

खत ने कहा कि यहां तो दीवानी फौजदारी के फैसले करने का अख्तियार है, कर्मों के फैसले करने में हमारी शक्ति नहीं है तब वह शाहूकार दरजेवदरजे राज दर्बार में पहुचा, और पहुच कर प्रार्थना की, तो राजा ने कहा कि वडे डाक्टरों से इसका इलाज कराओ, तो शाहूकार वोला कि मैं बहुत इलाज कर चुका हू, आप प्रजा के रक्षक हो सो मेरे दीन पर भी कृपादृष्टि करो, अर्थात् मेरा दु:ख दूर करो, क्यों कि आप राजा हो, सव का न्याय करते हो, तो मेरे पुत्र का कर्मों से क्या फैसला न करवाओगे ? राजा ठहर कर वोला कि राजा तथा महाराजा सव सांसारिक धन्दों के फैसले कर सकते हैं, परन्तु कर्मों का फैसला करने का किसी को भी अख्तियार नहीं है, कर्मों का फैसला तो आत्मा और कर्म मिल कर होता है वस, अब देखिये कि जो लोग ईश्वर को कर्मफल

योगी योगाभ्यास आदि तप कर के अज्ञान का नाश करें और ज्ञान का प्रकाश होवे, तो वह ज्ञान का प्रकाश क्या मियाद बाध कर होता है, कि इतने काल तक ज्ञान रहेगा। अपितु नहीं, सदा के वास्ते इस कारण तुम्हारे वाली मुक्ति ठीक नहीं यथा तुमारे ऋग्वेद भाष्य भूमिका आदिक पुस्तकों में लिखा है कि चार अर्ब बीस किरोड़ वर्ष प्रमाण का एक कल्प होता है, सो ईश्वर का दिन होता है अर्थात् इतने काल तक सृष्टि की स्थिति होती है, जिसमें सब जीव शुभ वा अशुभ कर्म करते रहते हैं फिर चार अर्ब बिस किरोड़ वर्ष प्रमाण विकल्प अर्थात् ईश्वर की रात्रि होती है अर्थात् ईश्वर सृष्टि का सहार कर देता है परमाणु आदि कुच्छ नही रहते हैं और सब जीवों की मुक्ति हो जाती है अर्यात् पूर्वोक्त विकल्प काल ईश्वर की रात्रि में सब जीव सुख में सोये रहते हैं. फिर वि-

(छूट जाने) का और निजगुण प्रकाश कर परम पद में मिल जाने का नाम है

आरिया —मुक्ति की और ज्ञान की उत्पत्ति हुई है तो कभी विनाश भी अवश्य ही होगा, अर्थात् फिर भी बंध मे फंसेगा

जैनी —खो देखिये, अज्ञानियो की बात मुक्ति की और ज्ञान की उत्पत्ति कहते हैं अरे भोले ! यह मुक्ति की और ज्ञान की उत्पत्ति हुई वा अनादि निजगुण का प्रकाश हुआ ? उत्पत्ति तो दूसरी नई वस्तु पैदा होने का नाम है, जैसे कैदी को कैद की मोक्ष होती है तो क्या यह भी नियम है कि कैद कितने काल के लिये छूटी ? अपि तु नहीं कैद की तो मियाद होती हैं परन्तु छूटने की मियाद नहीं है, हमेश के लिये छूटता है विना अपराध किये कैद में कभी नहीं आता है मुक्ति में तो कुच्छ कर्म करता ही नहीं,जो फिर बधन में आवे इस लिये मुक्ति सदा ही रहती है, यथा

पुरुष गोवधादि महाहिंसा और मास भक्षणादि अथवा परस्त्रीगमनादि अत्याचार करते भी कल्पान्त में सहज ही अनायास मुक्ति प्राप्त करते हैं अब नेत्र उघार कर देखो कि तुम्हारे उपदेश के अनुकूल चलने वाले पूर्वोक्त परमहस आदिकों की क्या अधिकता रही ? और उन पापिष्ठों की क्या न्यूनता रही? क्यों कि विकल्प के अन्त में क्या सन्यासी क्या कसाई सब को एक ही समय मुक्ति से धक्के मिल जावेंगे और इसी कर्त्तव्य पर ईश्वर को न्यायकारी कहते हो ? बस, जो महा मूढ होंगे वह ही तुम्हारी कही मुक्ति को मानेंगे

आरिया—हाजी, समाजियों में तो ऐसे ही मानते हैं, परन्तु हा इतना भेद तो है कि जैसे बारह घण्टे का दिन और बारह घण्टे की रात्रि;सो धर्मात्माओं को तो कुछ घण्टा दो घण्टा पहिले मुक्ति मिल जाती है और पापी आदिक सब जीवों को बारह घण्टे की

कल्प काल पर्य्यन्त कल्प के आदि में
सृष्टि रचता है तव सब जीव मुक्ति से
पर भेज दिये जाते हैं फिर वह शुभ और
अशुभ कर्म करने लग जाते हैं यह सिल
सिलायों ही अनादि से चला आता है

समीक्षा —भलाजी ! यह मुक्ति हुई वा
मजदूरों की रात हुई ? जैसे दिन भर तो म
जदूर मजदूरी करते रहे, रात को फावड़ा टो-
करी सराहणे रख कर सो गये; और प्रात
उठते ही फिर वही हाल! परन्तु एक और
भी अन्धेर की बात है कि जब कल्पान्त समय
सब जीवों का मोक्ष हो जाता है, तो जो क-
साई आदिक पापिष्ट जीव हैं उनको तुम्हारे
पूर्वोक्त कथन प्रमाण बड़ा लाभ रहता है क्यों
कि तुम्हारे परमहंस आदि धर्मात्मा पुरुष तो
बड़े२ कष्ट सन्धा, गायत्री, यज्ञ, होम, समाज,
वेदाभ्यास आदि परिश्रम द्वारा मुक्ति प्राप्त
करते हैं, और वह कसाई आदि महापापी

तो हम आगे देगे, परन्तु तुमसे हम पूछते हे कि पूर्वोक्त मुक्त चेतन एक जगह स्थित न रहे तो क्या इस लोक के ऊंच नीच स्थानों में घूमता फिरे ? अर्थात् भ्रमर बन कर बागों के फूलों में टक्करे मारता फिरे ? अथवा कृमि बन कर खाईयों (मोरियों) में सुख लगाता फिरे ? अथवा किसी और प्रकार से? अरे भाई! तुम कुच्छ बुद्धि द्वारा भी विचार कर देखो, कि जैसे नकारे पामर (गरीब) लोग गली२ में भटकते फिरते नजर आते हैं ऐसे श्रेष्ठ सुखी पदवीधर अर्थात् बमे ओहदेवाले भी गली२ में भटकते देखे हैं ? अपितु नहीं कारण क्या ? जितनी निष्प्रयोजनता होगी उतनी ही स्थिति अधिक होगी सो हे भाई ! तुम कैद के अर्थ नहीं जानते हो, कैद नाम तो पराधीनता का होता है, स्थित रहने का नहीं हे यथा, मैं जो इस ग्रथ की रचिता (कर्त्ता) हू सो विक्रम सम्वत् १९१० के साल में नि-

मुक्ति होती है

जैनी —हाय हाय! यह मुक्ति क्या ७१ यह तो महा अन्याय हुआ, क्यो कि धर्मात्माओं का धर्म निरर्थक हुआ और पापी पुरुषों का पाप निष्फल गया क्यो कि पाप करते हुए को भी बारह घण्टोंकी मुक्ति मिल जाती है तो उनके पाप निष्फल गये और धर्म्म करते भी बारह घण्टे की मुक्ति, तो उनके धर्म निष्फल गये क्या हुआ यदि तेरह चौदह घण्टे की मुक्ति हो गई तो? यथा खञ्जर तले किसीने टुक दम लिया तो फिर क्या? और तुमने जो प्रश्न किया था कि तुम्हारे मत में मुक्ति में ही बैठे रहते है सो मुक्ति क्या कोई हमारे घर की है? मुक्ति नाम हो सर्व दु खों से, सर्व क्रिया से,सर्व कर्मों से, जन्म—मरण (अवागमन) से, मुक्त हो जाने अर्थात् रहित हो जाने का है फिर तुमने कहा कि कैदी की तरह, सो इसका उत्तर

ब्राह्मण, वैष्णव, समाजी, आदिक हजार वा
डेढ हजार के लगभग स्त्रियें वा पुरुष सभा
में उपस्थित थे और दिन के आठ बजे
से दस बजे तक व्याख्यान होने के अनन्तर
दयानन्दी पुरुषों में से, दो आदमी कुच्छ
प्रार्थना करने के लिये आज्ञा मागी तदनन्तर
हमने भी एक घण्टा और सभा में बैठना
मंजूर किया तब उन्होंमें से एक भाईने सभा
में खडे हो कर लेक्चर दिया, कि जैनआ-
र्य्याजी श्रीमती पार्वतीजी ने दया सत्यादि का
अत्युत्तम उपदेश किया, इसमें हम कुच्छ भी
तर्क नहीं कर सकते हैं, परन्तु इनके 'रत्नसार',
नामक ग्रंथ में लिखा है कि जैन मत के सि-
वाय और मतवालों से अप्रियाचरण करना,
अर्थात् हतना चाहिये, भला देखो इनकी यह
कैसी दया है? तब कई एक सभासद पर-
स्पर कोलाहल (बुम्बुमाट) करने लगे तब
हमने कहा कि भाई! इसको भी मन

क्ट शहर आगरा जमींदार ज्ञातीय माता ध-
नवन्ती, और पिता वलदेवसिंह के घर मेरा
जन्म हुआ, और फिर मैंने पूर्व पुण्योदय से
सम्वत् १९७४ के साल में जैनमत में सती
का योग (सयम) ग्रहण किया, और फिर
हमेश ही साधवीयों के साथ नियमपूर्वक वि-
चरते हुए, दिल्ली, आगरा, पञ्जाव स्थल में
रावलपिण्डी, स्यालकोट, लाहौर. अमृतसर,
जालंधर, होश्यारपुर लुदेहाना, पटियाला,
अम्वाला, आदिक गाव नगरों में धर्मोपदेश
सभा समीक्षा करते रहते हैं और बुद्धि के
अनुसार जयविजय भी होती ही रहती है
फिर विचरते२ जयपुर, जोधपुर, पाली, उद-
यपुर आते हुए १९५६ के साल माघ महीने
में अजमेर के पास एक रजवाड़ा रियास्त शा-
यापुर में चार पाच दिन तक मुकाम किया,
और वहा तीन दिन तक सभा, समीक्षा, ध
र्मोपदेश किंया, जिसमें ओसवाल, राजपूत,

हमने उत्तर दिया, कि जैनियों की दया तो सर्वत्र प्रसिद्ध है. देखो 'इम्पीरीयल गैजेटियर' हिन्द जिल्द ७ठी दफादोयम, सन् १८८६ के १५ए पृष्ठ में ऐसा लिखा है, कि, जैनी लोग एक धनाढ्य फिरका है अमूमनथोक फरोशी और हुण्डी चिठी के कारोबार करते हैं, बल्के आपस में बम्मेज जोल रखते हैं यह लोग बडे खैरायत करने वाले हैं और अक्सर हैवानों की परवरिश के वास्ते शिफाखाने बनवाते हैं, इति परन्तु तुम सरीखे भोले लोगों के मत गुमान रूपी रोग से विद्या रूपी नेत्र मींच हो रहे हैं ताते औरों के तो अनहोते दूषण देखते हे और अपने होते दूषण भी नहीं देखते इसी 'सत्यार्थ प्रकाश' के ग्यारहवें समुल्लास के ३५६ पृष्ट की ५ वीं वा ७ठी पंक्ति में दयानन्दजी क्या लिखते हैं? कि इन भागवत आदि पुराणों के बनाने वाले क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये? वा जन्मते ही

उपजी कह लेने दो तब लोक चुप कर
बैठे उसने अपने प्रश्न को सविस्तर कहा
अनन्तर हमने उत्तर दिया कि, हमारे
प्रमाणिक सूत्रों मे ऐसा भाव कहीं भी नहीं
है और जो तुमने ग्रंथ का प्रमाण दिया है
उस ग्रथ को हम प्रमाणिक भी नहीं समझते
हैं परन्तु तुम्हारे दयानन्द कृत 'सत्यार्थप्र-
काश' नामक पुस्तक सवत १९५४ के छपे
हुए पृष्ठ ६३० मे ऐसा लिखा है, कि और
धर्मी अर्थात् वेदादि मत से बाहिर चाहे कैसा
ही गुणी भी हो उसका भी नाश अवन्नति
और अप्रियाचरण सदा ही किया करें अब
तुम देख लो यह दयानन्द की कैसी दया
हुई? फिर कहा, कि अजी! हमारे दयान-
न्दजी ने 'सत्यार्थप्रकाश' के बारहवें समुल्लास
के ४६७ पृष्ठ में प्रथम ही ऐसा लिखा है कि
देखो इनका वीतराग भाषित दयाधर्म दूसरे
मतवालों का जीवन भी नहीं चाहते हैं! तब

हमने उत्तर दिया, कि जैनियों की दया तो सर्वत्र प्रसिद्ध है. देखो 'इम्पीरीयल गैजेटियर' हिन्द जिल्द ६ठी दफादोयम, सन् १८८६ के १५० पृष्ठ में ऐसा लिखा है, कि जैनी लोग एक धनाढ्य फिरका है अमूमनथोक फरोशी और दुकानी चिठी के कारोबार करते हैं, बल्कै आपस में वमामेज जोल रखते हैं. यह लोग बडे खैरायत करने वाले हैं और अक्सर है-वानों की परवरिश के वास्ते शिफाखाने ब-नवाते हैं, इति. परन्तु तुम सरीखे भोले लोगों के मत गुमान रूपी रोग से विद्या रूपी नेत्र मींच हो रहे हैं ताते औरों के तो अनहोते दूषण देखते है और अपने होते दूषण भी नहीं देखते इसी 'सत्यार्थ प्रकाश' के ग्यार-हवें समुल्लास के ३५६ पृष्ट की ५ वीं वा ६ठी पक्ति में दयानन्दजी क्या लिखते हैं? कि इन भागवत आदि पुराणों के बनाने वाले क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये? वा जन्मते ही

समय मर क्यों न गये ? और ४३२ पृष्ठ के नीचे लिखता है कि जो वेदों से विरोध करते हैं उनको जितना दुःख होवे उतना योग्य है अब देख तेरे दयानन्दने अन्य मतों पर कैसी दया करी ? होय ! अफसोस ! अपनी मजी तले सोटा नहीं फेरा जाता यथा

दोहा

आप तो सोध्या नहीं, सोधे चारों कूट,
बिल्ली खेद पमौसिया, अपने घर रहो ऊट

फिर कहने लगा कि, अजी ! यह क्या बात है हमारे 'सत्यार्थप्रकाश' के ४६२ पृष्ठ में दयानन्दजी लिखते हैं कि जैनी लोग अपने मुखसे अपनी बड़ाई करनी और अपने ही धर्म को बड़ा कहना, यह बड़ी मूर्खता की बात है तब हमको जरा हसी आ गई और कहा कि भला तुमारा दयानन्द तो अपने माने हुए धर्म को छोटा कहता होगा ! और औरों को बड़ा कहता होगा ! अरे भोले ! 'सत्यार्थप्र-

काश' को आंख खोल कर देख, और बांच, कि इसमें प्रत्येक मतानुयायी पुरुषों को अक्ल के अन्धे, चाम्बल, पोप, आदिक अपशब्द कह कर अर्थात् गाली आदि दे कर लिखा है खैर, जला तुम हमको एक यह तो बताओ कि तुम्हारे दयानन्द का ईश्वर साकार है वा निराकार ? और सर्वव्यापक है वा एकदेशी है ? तब उसने उत्तर दिया कि निराकार और सर्वव्यापक है. तो हमने पूछा कि, तुम्हारे ईश्वर बात करता है वा नहीं ? तब उसने हस कर कहा कि कभी निराकार भी बोल सकते हैं ? हमने कहा कि बस! अब तेरी उक्त दोनों बातों का हम खण्डन करते हैं देख, 'सत्यार्थ प्रकाश' के सातमे समुल्लास सब के १८८ पृष्ठ के नीचे की छठी पंक्ती में लिखते हैं, कि ईश्वर सब को उपदेश करता है, कि हे मनुष्यों ! मैं सब का पति हू, मैं ही सब को धन देता हू और भोजन

दे कर पालन पोषण करता हूं, और मैं सूर्य की तरह सब जगत् का प्रकाशक हूं, ज्ञान आदिक धन तुम मुझ ही से मागो, मैं ही जगत् को करने, धरने वाला हूं, तुम लोग मुझे गेम कर किसी दूसरे को मत पूजो (सत्य मानो). अब देख नोले ! जैनी तो म नुष्य मात्र हैं, अपनी बमाई करते होंगे, वा न करते होंगे, परन्तु तुम्हारा तो ईश्वर ही स्वय अपनी बमाई करता है और कहता है कि मुझे ही मानो, और सब का त्याग करो ! फिर और देखो बमे आश्चर्य्य की बात है कि ईश्वर कहता है कि मैं धन देता हूं, और नोजनादि दे कर पालन करता हूं, प- रन्तु लाखों मनुष्य निर्धन पमे हैं, क्या उन- को देनेके लिये ईश्वर के खजाने में धन नहीं रहा? और दुर्जिक्ष (अकाल) पमने पर लाखों मनुष्य और पशु नूख ही से मर जाते हैं, क्या ईश्वर के गल्ले में अन्न नहीं रहता होगा?

और दूसरे क्या दयानन्द को तेरी तरह ज्ञान
नहीं था कि निराकार और सर्व व्यापी काहे
मे, और कहा से, और कैसे बात कर सकता
? लिखते तो इस प्रकार से हैं कि मानो
यानन्द के कान में ही ईश्वर ने ओछे आा-
मीयो की तरह बाते करी हों परन्तु यह
याल न किया कि क्या सब ही मेरे कहने
ो हाए करेंगे ? अपितु विद्वान पुरुष ऐसे
ी तो विचारेंगे कि वाणी (बात) करनी तो
र्मेन्दिय का कर्म होता है, तो क्या ईश्वर के
र्मेंद्रिय आदिक शरीर होता है ? बस कुच्छ
मझना भी चाहिये अब कहोजी ! तुम्हारे
स्वामीजी के ऐसे वचनों पर क्या धन्यवाद
करें ? तब वह तो निरुत्तर हुआ परन्तु इन
दयानन्दियो में यह विशेष कर दस्तूर है
कि एक निरुत्तर हुआ और दूसरे ने एक और
ही अनघडित सवाल का फन्द लगाया. खैर!
फिर दूसरे समाजिये ने खडे हो कर लेक्चर

दे कर पालन पोषण करता हू, और मैं सू
की तरह सब जगत् का प्रकाशक हूं, ज्ञा
आदिक धन तुम मुझ ही से मागो, मैं ई
जगत् को करने, धरने वाला हू, तुम लोग
मुझे छोड़ कर किसी दूसरे को मत पूजो
(सत्य मानो) अब देख लोले! जैनी तो म
नुष्य मात्र हैं, अपनी बड़ाई करते होंगे,
वा न करते होंगे, परन्तु तुम्हारा तो ईश्वर
ही स्वय अपनी बड़ाई करता है और कहता
है कि मुझे ही मानो, और सब का त्याग
करो! फिर और देखो बड़े आश्चर्य्य की बात
है कि ईश्वर कहता है कि मैं धन देता हू,
और भोजनादि दे कर पालन करता हू, प-
रन्तु लाखों मनुष्य निर्धन पड़े हैं, क्या उन-
को देनेके लिये ईश्वर के खजाने में धन नहीं
रहा? और दुर्भिक्ष (अकाल) पड़ने पर लाखों
मनुष्य और पशु भूख ही से मर जाते हैं,
क्या ईश्वर के गल्ले में अन्न नहीं रहता होगा?

राजपूतः—शायपुरमें.

हमः—ओहो! अस्सी वर्षसे कैदमें हो? अर्थात् इस अनुमान से आध मील महदूद गांव में ही कैदी हो, और जब तक जीओगे इसी गांव में रहोगे वा कहीं लाहौर, कलि-कत्ता, जयपुर, जा कर रहोगे वा घूमते फिरोगे?

राजपूत—यहा ही रहूंगा, मुझे क्या आवश्यक्ता है जो कि जगह२ रहूं वा कहीं२ घूमता फिरू?

हम—तो क्या तुम उमरकैदी हो?

राजपूत—कैदी किसका हूं, मैं तो स्व-इच्छा और स्वाधीन यहा ही का वासिंदा हूं मेरा कोई काम अरे तो परदेश में भी जाऊं नहीं तो क्यों जाऊं?

हम—भला! यदि तुमको राजा सा-हिब की आज्ञा हो कि तुम एक मास तक शा-यपुर से कहीं बाहिर नहीं जाने पावोगे तब तुम क्या करो?

दिया, कि अजी ! इनका और ज्ञान तो ठीक है परन्तु जो सर्व धर्म का सार मुक्ति है वह ठीक नहीं है. क्यों कि यह मोक्ष रूप चेतन को शिला के ऊपर एक महदूद जगह में हमेश ही रहना मानते हैं, कहो जी ! वह मुक्ति क्या हुई ? एक आयु भर की कैद हुई ! तब हमने देखा कि यह वेगुरे प्रत्येक मत के दोषान्वेषी अर्थात् अवगुणग्राही हैं, सूत्रअर्थ को तो जानते ही नही हैं यहा तो युक्ति प्रमाण से ही समझाना चाहिये तब सभा के बीच में एक राजपूत सर्दार अस्सी वर्ष के लगभग की आयु वाला बैठा हुआ था और हमने उस ही की ओर निगाह कर के कहा, कि भाई! तुम्हारी कितने वर्ष की आयु हैं ? तो उसने कहा ८० वर्ष की है

हम —तुम्हारा जन्म कहा हुआ है ?

राजपूत —शायपुरमें

हम —जब से अब तक कहा रहे ?

राजपूतः—शायपुरमें.

हमः—ओहो! अस्सी वर्षसे कैदमें हो? अर्थात् इस अनुमान से आध मील महदूद गांव में ही कैदी हो, और जब तक जीओगे इसी गाव में रहोगे वा कहीं लाहौर, कलि-कत्ता, जयपुर, जा कर रहोगे वा घूमते फिरोगे?

राजपूत—यहा ही रहूंगा, मुझे क्या आवश्यक्ता है जो कि जगह२ रहू वा कहीं२ घूमता फिरू?

हम—तो क्या तुम उमरकैदी हो?

राजपूत—कैदी किसका हूं, मैं तो स्व-इच्छा और स्वाधीन यहा ही का बासिंदा हूं मेरा कोई काम अड़े तो परदेश में भी जाऊं नहीं तो क्यों जाऊं?

हम—भला! यदि तुमको राजा साहिब की आज्ञा हो कि तुम एक मास तक शा-यपुर से कहीं बाहिर नहीं जाने पावोगे तब तुम क्या करो?

दिया, कि अजी! इनका और ज्ञान तो ठीक है परन्तु जो सर्व धर्म का सार मुक्ति है वह ठीक नहीं है. क्यों कि यह मोक्ष रूप चेतन को शिला के ऊपर एक महदूद जगह में हमेशा ही रहना मानते हैं, कहो जी! वह मुक्ति क्या हुई? एक आयु भर की कैद हुई! तब हमने देखा कि यह वेगुरे प्रत्येक मत के दोषान्वेषी अर्थात् अवगुणग्राही हैं, सूत्रअर्थ को तो जानते ही नही हैं यहा तो युक्ति प्रमाण से ही समझाना चाहिये तब सभा के बीच में एक राजपूत सर्दार अस्सी वर्ष के लगभग की आयु वाला बैठा हुआ था और हमने उस ही की ओर निगाह कर के कहा, कि भाई! तुम्हारी कितने वर्ष की आयु है? तो उसने कहा ८० वर्ष की है

हम —तुम्हारा जन्म कहा हुआ है?

राजपूत —शायपुरमें

हम —जब से अब तक कहां रहे?

राजपूतः—शायपुरमें.

हम —ओहो! अस्सी वर्षसे केदमें हो?
र्थात् इस अनुमान से आध मील महदूद
ांव में ही कैदी हो, और जब तक जीओगे
सी गाव में रहोगे वा कहीं लाहोर, कलि-
त्ता, जयपुर, जा कर रहोगे वा घूमते फिरोगे?

राजपूत —यहा ही रहूंगा, मुझे क्या
आवश्यक्ता है जो कि जगह२ रहूं वा कहीं२
घूमता फिरू?

हम —तो क्या तुम उमरकैदी हो?

राजपूत —कैदी किसका हूं, मैं तो स्व-
इच्छा और स्वाधीन यहा ही का वासिंदा हूं
मेरा कोई काम अरे तो परदेश में भी जाऊं
नहीं तो क्यों जाऊं?

हम —भला! यदि तुमको राजा सा-
हिब की आज्ञा हो कि तुम एक मास तक शा-
यपुर से कहीं वाहिर नहीं जाने पावोगे तब
तुम क्या करो?

दिया, कि अजी! इनका और ज्ञान तो ठीक है परन्तु जो सर्व धर्म का सार मुक्ति है वह ठीक नहीं है. क्यों कि यह मोक्ष रूप चेतन को शिला के ऊपर एक महदूद जगह में हमेश ही रहना मानते हैं, कहो जी! वह मुक्ति क्या हुई? एक आयु भर की कैद हुई! तब हमने देखा कि यह वेगुरे प्रत्येक मत के दोषान्वेषी अर्थात् अवगुणग्राही हैं, सूत्रअर्थ को तो जानते ही नहीं हैं यहा तो युक्ति प्रमाण से ही समझाना चाहिये तब सभा के वीच में एक राजपूत सर्दार अस्सी वर्ष के लगभग की आयु वाला बैठा हुआ था और हमने उस ही की ओर निगाह कर के कहा, कि भाई! तुम्हारी कितने वर्ष की आयु है? तो उसने कहा ८० वर्ष की है

हम —तुम्हारा जन्म कहा हुआ है?

राजपूत —शायपुरमें

हम —जब से अब तक कहां रहे?

राजपूतः—शायपुरमें.

हम.—ओहो! अस्सी वर्षसे कैदमें हो? अर्थात् इस अनुमान से आध मील महदूद गांव में ही कैदी हो, और जब तक जीओगे इसी गाव में रहोगे वा कहीं लाहौर, कलि-कत्ता, जयपुर, जा कर रहोगे वा घूमते फिरोगे?

राजपूत—यहा ही रहूंगा, मुझे क्या आवश्यक्ता है जो कि जगह२ रहूं वा कहीं२ घूमता फिरू?

हम—तो क्या तुम उमरकैदी हो?

राजपूत—कैदी किसका हू, मैं तो स्व-इच्छा और स्वाधीन यहा ही का बासिंदा हूं मेरा कोई काम अपे तो परदेश में भी जाऊं नहीं तो क्यों जाऊं?

हम—भला! यदि तुमको राजा साहिब की आज्ञा हो कि तुम एक मास तक शा-यपुर से कहीं बाहिर नहीं जाने पावोगे तब तुम क्या करो?

दिया, कि अजी ! इनका और ज्ञान तो ठीक है परन्तु जो सर्व धर्म का सार मुक्ति है वह ठीक नहीं है. क्यों कि यह मोक्ष रूप चेतन को शिला के ऊपर एक महदूद जगह में हमेशा ही रहना मानते हैं, कहो जी ! वह मुक्ति क्या हुई ? एक आयु भर की कैद हुई ! तब हमने देखा कि यह वेगुरे प्रत्येक मत के दोषान्वेषी अर्थात् अवगुणग्राही हैं, सूत्रअर्थ को तो जानते ही नही हैं यहा तो युक्ति प्रमाण से ही समझाना चाहिये तब सभा के बीच में एक राजपूत सर्दार अस्सी वर्ष के लगभग की आयु वाला बैठा हुआ था और हमने उस ही की ओर निगाह कर के कहा, कि भाई ! तुम्हारी कितने वर्ष की आयु हैं ? तो उसने कहा ८० वर्ष की है

हम —तुम्हारा जन्म कहा हुआ है ?

राजपूत —शायपुरमें

हम —जब से अब तक कहा रहे ?

जिये निरुत्तर हो कर चले गये, और सभा विसर्जन हुई, यहां मुक्ति के विषय में पूर्वोक्त प्रश्न समतुल्य होने के कारण यह कथन याद आने से लिखा गया है.

॥ १९ वा प्रश्न ॥

आरिया—बाबाजी! तुम मोक्ष से छूट कर अर्थात् वापिस आना तो नहीं मानते हो और सृष्टि अर्थात् लोक को प्रवाह से अनादि मानते हो, तो जब सब जीवों की मुक्ति हो जावेगी तो यह सृष्टि क्रम अर्थात् दुनिया की सिलसिला बन्द न हो जायगा?

जैनी—ओहो! तो क्या इसी फिकरसे शायद पुनरावृत्ति मानी है अर्थात् मुक्ति से वापस आना माना है? कि संसार का सिलसिला बन्द ना हो जाय, परन्तु मुक्ति की खबर नहीं कि मुक्ति क्या पदार्थ है? यथा कहावत है "काजी! तुम क्यों दुबले? शहर के अन्देशे" परन्तु संसार का सिलसिला अब तक तो ब-

राजपूतः—तो हम घना ही धन व्यय कर दें और सर्कार से विज्ञप्ति (अर्ज) करें कि हमसे क्या अपराध हुआ, जो आप हमें ग्राम से बाहिर नहीं जाने दो हो, और वकील भी खर्च करें, इत्यादि

हम.—नवाजी! तुम अस्सी वर्ष से यहा ही रहते हो, तबसे तो घबराये नहीं, जो एक महीने की रुकावट हो गई तो क्या हुआ, जो इतनी सिफारशें और घबराहट करना पड़ा?

राजपूत—अजी, महात्माजी! वह तो अपनी इच्छा से रहना है, यह परवश का रहना है सो कैद है

हम—बस, जो पराधीन अर्थात् किसी जोरावर की रुकावट से एक स्थान में रहे तो वह कैद है, परन्तु सच्चिदानन्द मोक्ष रूप आत्मा स्वाधीन सदा आनन्द रूप है इसको कैद कहना मूर्खों का काम है तब वह समा-

जिये निरुत्तर हो कर चले गये, और सभा विसर्जन हुई, यहां मुक्ति के विषय में पूर्वोक्त प्रश्न समतुल्य होने के कारण यह कथन याद आने से लिखा गया है

॥ १५ वा प्रश्न ॥

आरिया—जलाजी! तुम मोक्ष से हट कर अर्थात् वापिस आना तो नहीं मानते हो और सृष्टि अर्थात् लोक को प्रवाह से अनादि मानते हो, तो जब सब जीवों की मुक्ति हो जावेगी तो यह सृष्टि क्रम अर्थात् दुनिया की सिलसिला बन्द न हो जायगा?

जैनी—ओहो! तो क्या इसी फिकरसे शायद पुनरावृत्ति मानी है अर्थात् मुक्ति से वापस आना माना है? कि ससार का सिलसिला बन्द ना हो जाय, परन्तु मुक्ति की खबर नहीं कि मुक्ति क्या पदार्थ है? यथा कहावत है "काजी! तुम क्यों दुबले? शहर के अन्देशे" परन्तु ससार का सिलसिला अब तक तो ब-

राजपूत—तो हम घना ही धन व्यय कर दें और सर्कार से विज्ञप्ति (अर्ज) करें कि हमसे क्या अपराध हुआ, जो आप हमें गांव से बाहिर नहीं जाने दो हो, और वकील जी खफा करें, इत्यादि

हमः—नबाजी! तुम अस्सी वर्ष से यहा ही रहते हो, तबसे तो घबराये नहीं, जो एक महीने की रुकावट हो गई तो क्या हुआ, जो इतनी सिफारशें और घबराहट करना पड़ा?

राजपूत—अजी, महात्माजी! वह तो अपनी इच्छा से रहना है, यह परवश का रहना है सो कैद है

हम—बस, जो पराधीन अर्थात् किसी जोरावर की रुकावट से एक स्थान में रहे तो वह कैद है, परन्तु सच्चिदानन्द मोक्ष रूप आत्मा स्वाधीन सदा आनन्द रूप है इसको कैद कहना मूर्खों का काम है तब वह समा-

बोला कि लिख,एक२ दो दो दूनीचार,तो शिष्य बोला कि मुझे तो किरोडको किरोड गुणा करना अर्थात् जरब देना, तकसीम देना, समझाओ जला, जब तक दो दूनी चार भी नहीं जानता तब तक किरोडों के हिसाब को बुद्धि कैसे स्वीकार करेगी ? जब पढते२ पाठक की बुद्धि प्रबल पण्डित के तुल्य हो जावेगी तब ही किरोडों के हिसाब को समझेगा

आरिया —यूं तो तुमारे सूत्रों को पढते पढते ही बूढे हो जावेंगे तो समझेंगे कब ?

जैनी —अरे भाई ! जो पेट भराई की विद्या फारसी अङ्गरेजी आदिक बडे परिश्रम से बहुत काल में आती है, कभी२ अनुत्तीर्ण (फेल) हो जाता है, और कभी उत्तीर्ण (पास) होता है, फिर कोई२ बी ए, एम् ए पास करते हैं तो तुम स्कूल में बैठते ही मास्टर से यों ही क्यों नहीं कह देते,

न्द हुआ नहीं, यदि आगे को बन्द हो जावेगा तो मोक्षवालों को कुछ हानि भी नहीं है. क्यों कि सब धर्मात्माओं का यही मत है, कि इस दु ख रूपी संसार से छुटकारा होवे अर्थात् मुक्ति (अनन्त सुख की प्राप्ति) हो, तो हमारी बुद्धि के अनुसार सब की इच्छा पूर्ण होय तो अच्छी बात है, परन्तु तुम यह बतलाओ कि लोक में जीव कितने हैं ?

आरिया.—असख्य होंगे, वा अनन्त.

जैनी —झिजकते क्यों हो ? साफ अनन्त ही कहो, तो अब अनन्त शब्द का क्या अर्थ है ? न अन्ते, अनन्ते, तो फिर अनादि की आदि कहनी, और अनन्त का अन्त कहना, यह दोनों ही मिथ्या हैं और इसका असली परमार्थ तो पूर्वक षट्द्रव्य का स्वरूप गुरू कृपा से सीखा वा सुना जाय तब जाना जाता है यथा कोई विद्यार्थी किसी पण्डित के पास हिसाब सीखने को आया, तब पण्डित

टिया, न छोटे, न घडे, न मट्टे में ही आ सकता है. हा ! स्वाद मात्र से तो साराश समुद्र का आ सकत है; यथा खारा, वा, मीठा ऐसे ही सर्वज्ञों के कहे हुए शास्त्र अर्थ समुद्र के जल वत् अनन्त हैं दलील रूपी लुटिया में नहीं आ सकते और दलील जो तो पूर्वोक्त विद्वानों के वचन सुन२ कर ही बनी होती है

बस पूर्व कहे प्रश्नोत्तरों से सिद्ध हो चुका कि ईश्वर कर्त्ता नहीं है. और नाही ईश्वरोक्त वेद हैं, क्यों कि वेदों में पशुवध करना, और मास खाना लिखा है, यथा मनुस्मृति के पाचवें अध्याय के २७, २८, २९ वें श्लोक में लिखा है —

श्लोक

प्रोक्षितं भक्षयेन्मासं ब्राह्मणाना च काम्यया ॥
यथा विधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये॥२७॥
प्राणस्यान्नमिद सर्व प्रजापति रकल्पयत् ॥
स्थावर जङ्गम चैव सर्व प्राण स्यभोजनम्॥२८॥

कि हमतो ए, बी, सी, डी, नहीं सीखते, हमारी बुध्दि में तो आज ही बी: ए, एम: ए वाली बातें बुद्धि से ही समझा के बकालत का ऊंफा दिखवा दो, नहीं तो इतनी २ बडी किताबें पढतेर ही बूढे हो जायगें. जला, ऐसे हो सकता है? कदापि नहीं तो फिर यह पूर्ण परमार्थ रूप अनादि अनन्त मुक्ति आदिक वर्णन (वयान) विना सत्शास्त्रों के श्रवणादि कैसे जाना जावे? ताते कुछ वीतराग जाषित सूत्रों को सीखो, सुनो, ना तो सत्यवादियों के वाक्य पर श्रध्दा ही करो, यदि तुम्हारी सी तरह ईट मारवें प्रश्नों के उत्तर में ही पूर्वोक्त अर्थ दलील में आ जाता तो सर्वज्ञ और अल्पज्ञ—विद्वान् और मूर्ख की वात में जेद ही क्यों होता? सव ही सर्वज्ञ और विद्वान् हो जाते अल्पज्ञ और मूर्ख कौन रहता? हे जाई! दलील में सम्पूर्ण ज्ञान नहीं आ सकता, यथा समुद्र का जल न तु ख-

शास्त्रों का कहना ही क्या ? और यहां इस विषय में वेदमन्त्रो के लिखने की भी आवश्यकता (जरूरत) थी, परन्तु ग्रंथ के विस्तार के भय से नहीं लिखे हैं, और दूसरे हमारे जैनी भाईयों में से इस विषय में कई एक पुस्तक छप चुके हैं बस ! यदि ऐसे वेद ईश्वरोक्त हैं तो वह ईश्वर ही ठीक नहीं है यदि ईश्वर के कहे हुए वेद नहीं हैं तो वेदों का कथन ईश्वर को पूर्वोक्त कर्त्ता कहने आदिक में प्रमाण नहीं हो सकता

पृच्छक—सत्य शास्त्र कौनसे है ? और असत्य कौनसे हैं ?

उत्तर—सत्य और असत्य तो सदा ही से है परन्तु असली बात तो यह है कि जिन शास्त्रों में यथार्थ जड़, चेतन, लोक, परलोक, बंध, मोक्ष, आदि का ज्ञान हो और शास्त्रानुयायियों के नियम आदि व्यवहार श्रेष्ठ हो, वही सत्य हैं और वही प्रथम हैं

अर्थ—ब्राह्मणों की कामना मांसभक्षण करने की हो तो यज्ञ में प्रोक्त विधि से अर्थात वेद मन्त्रानुसार शुद्ध कर के भक्षण कर लें श्राद्ध में मधुपर्क से, मास मधुपर्क इति, और प्राणरक्षा के हेतु विधि के नियम से ॥२७॥

प्राण का यह सम्पूर्ण अन्न प्रजापति ने बनाया है. स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण प्राण का भोजन है ॥२८॥

श्लोक.

यज्ञार्थ पशव सृष्टा. स्वयमेव स्वय भुवा ॥
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवध
॥ २९ ॥

अर्थ—ब्रह्माजी ने स्वयमेव ही यज्ञ की सिद्धि की वृद्धि के लिये पशु बनाये हैं इस लिये यज्ञ में पशुवध अर्थात् यज्ञ में पशु मारने का दोष नहीं है इति ॥२९॥

तर्क —जब कि धर्मशास्त्र मनुस्मृति ही वेदों के आधार से यों पुकारती है, तो पाप-

मिलाप कलियुगदूत ने जला कब होने दिया?
यद्यपि वर्मों की शिक्षा है —
मत मतान्तर विवाद में, मत उरझो मतिमान्।
सार ग्रहो सब मतन का,अपनी मति समान॥
निज आतम को दमन कर,पर आतम को चीत।
परमातम का जजन कर यही मत परवीण ॥

प्रश्न १६

पृच्छक –अजी! आपने १७ वें प्रश्न के अते लिखा है, कि वेदान्ती नास्तिक है, अर्थात् वेदानुयायी आदिमें तो लोक, परलोक, आदिक आस्तिक प्रवृत्ति मानते हैं, परन्तु अन्तमें नास्तिक मत ही सिद्ध होता है सो कैसे है?

उत्तर —हमारी एक दो वार वेदान्तियों से कुछ चर्चा जी हुई, और वेदान्त के एक दो ग्रथ जी देखने में आयें, उनसें यह ही प्रगट हुआ कि यह वेदान्ती अद्वैतवादी नास्तिक हैं अर्थात् वेदान्ती नास्तिक ऐसे क-

परन्तु पक्ष में तो यों जैनी कहेंगे कि जैन प-
हिले है और वेदानुयायी कहेंगे कि वेद पहिले
है और मतवाले कहेंगे कि हमारा मत पहिले
है यह तो झगड़ा ही चला आता है, जैसे
कोई कहता है कि मेरे वर्मों के हाथ की सन्दूक
बहुत पुरानी है, और पीली२ अशरफीयों
की भरी हुई है परन्तु ताले बन्द हैं, दूसरा
बोला कि, नहीं, तुम्हारे नीली अशरफियों की
है, हमारे वर्मों की पीली है यों कह२ कर कि-
तने ही काल तक झगडते रहो क्या सिद्ध होगा?
योग्य तो यों है कि सभा के बीच अपनी२
सन्दूक खोल धरें, ते सभासद स्वय ही देख लेंगे
कि पीली किसकी हैं और नीली किसकी हैं
और बुद्धिमानों की विद्याप्राप्ति का सार भी यही
है कि परस्पर धर्म स्नेह आकर्षण बुद्धि से,
सत्य, असत्य का निर्णय करें, फिर सत्य को
ग्रहण करें, और असत्य को त्यागें, जिससे
यह मनुष्यजन्म भी सफल होवे परन्तु ऐसा

तर्क--प्रथम ही एक निर्गुण ब्रह्म का उपदेश क्यों नहीं किया?

उत्तर--जो श्रुति प्रथम ही ब्रह्म का बोध न करती, तो ब्रह्म के अति सूक्ष्म होने से इस जीव को ब्रह्मका कदापि बोध न हो सकता

जैनी:--देखो! इस लेख से भी द्वैतभाव सिद्ध होता है. अर्थात् जीव और ब्रह्म दो पृथक् हुए, क्यों कि एक तो याद करने वाला और एक वह जिस को याद किया जावे, तथा एक तो ढूंढने वाला, अर्थात् जीव, और दूसरा वह जिसको ढूंढे, अर्थात् ब्रह्म

नास्तिक--नहीं जी, जीव और ब्रह्म एक ही हैं वह अपने आप ही को ढूंढता है

जैनी--जो आपही को भूल रहा है वह ब्रह्म काहेका हुआ? वह तो निपट ग्रंथल (अज्ञानी) हुआ.

(नास्तिक चुप हो रहा)

हते हैं,कि एक ब्रह्म ही है और दूसरा कुछ भी पदार्थ नहीं है, इस में एक श्रुतिका प्रमाण भी देते हैं " एक मेवाद्वितीयं ब्रह्म "

(२)

जैनी —ब्रह्म चेतन है वा जड़?

नास्तिक —चेतन

जैनी —तो फिर जड़ पदार्थ चेतन से न्यारा रहा. यह तो दो पदार्थ हो गये, (१) चेतन और (२) जड़ क्यों कि जड़ चेतन दोनों एक नहीं हो सकते हैं किसी प्रयोग से मिल तो जाय परन्तु वास्तव में एक रूप नहीं होते हैं, क्षीर नीरवत् और वेदान्ती आनन्द-गिरि परमहस कृत आनन्दामृत वर्षिणी नाम पुस्तक विक्रमी सवत १९५३ में ववह छपी जिसके प्रथम अध्याय के १८ वें पृष्ठ में लिखा है 'कि प्रथम श्रुतिने देह आदि को आत्मा कहा, और जीव ईश्वर से गुणका भेद कहा, फिर उसका निषेध किया.

प्रथम अध्याय के अन्त के २५ पृष्ठ में लिखा है, कि ना मोक्ष है और ना जीव है और नाही ईश्वर और नाही और कुछ है फिर यह नास्तिक ज्ञान२ और मोक्ष२ पुकारते हैं, यथा वालूकी भींत पर चुवारे चिनें और फिर तीसरे अध्याय के सातवें पृष्ठ ७ वीं भूमीका के कथन में लिखते हैं, कि कोई पुरुष नदी के तट पर खड़ा हो कर नगर की ओर दृष्टि करे, तो उसे सारा नगर दीखता है, फिर वह सौ दोसौ कदम जलमें आगे को गया जहां गाती तक जल आया, फिर वह वहा खड़ा हो कर देखे, तो ऊंचे मकान तो दीखें परन्तु नीचे के मकान आदिक नगर न दीखें फिर गले तक जल में गया तो कोई२ शिखर नजर आया, और कुच्छ न दीखा जब गहरे जलमें डूब ही गया तो फिर कुच्छ भी न देखा ऐसे ही मोक्ष हो कर ससार नहीं दीखे, अर्थात् संसार मिथ्या है

(२)

जैनी—सखा ! जीव और ब्रह्म चेतन है वा जड़ ?

नास्तिकः—अजी ! चेतन है

जैनी—तो पूर्वोक्त दो चेतन सिद्ध हुए एक तो ब्रह्म, दूसरा जीव

नास्तिक—नहीं जी, ब्रह्म चेतन, और जीव जड़

जैनी—यदा जीव जड़ है, तो पूर्वोक्त ब्रह्म को मिलनेका जीव को ज्ञान होना लिखा है, सो कैसे ? और फिर जीव ब्रह्मज्ञानी हो कर ब्रह्म में मिले अर्थात् मुक्त होवे, सो कैसे

(नास्तिक चुप हुआ)

जैनी—वास्तव में तो तुम्हारा ब्रह्म और मुक्त यह दोनों ही जड़ तुमारे कथन प्रमाण से सिद्ध होते हैं और नास्तिक शब्द का अर्थ भी यही है, कि होते हुए पदार्थ को जो नास्ति कहे, क्यों कि आनन्दामृत वर्षिणी के

और सुननेवाला भी रहता ही होगा, यदि नहीं तो तू सुनाता क्यों है, और सुनाता किस को है, और सुनने से क्या लाभ होता है ?

(४)

नास्तिक —घटाकाश, मठाकाश, महाकाश, यह तीन प्रकार से हमारे मतमें आकाश माने हैं, सो घटवत् शरीरका नाश होने पर महाकाशवत् मोक्ष हो जाता है

जैनी —तो यह बताइये कि वह घटवत् शरीर जड़ है वा चेतन ?

नास्तिक —जड है

जैनी —घटवत् शरीर जड़ है तो वह बनाये किसने ? और किस लिये बनाये ! क्यों कि तुम चौदहवें पृष्ठ मे लिख आये हो कि आत्मा के सिवाय सब अनित्य है तो वह घड़े भी अनित्य ही होंगे, ता ते पुनरपि२ बनाये जाते होंगे

(नास्तिक चुप हो रहा)

जैनी,—देखो ! इन नास्तिको की क्या अच्छी मोक्ष हुई ? अरे मतिमन्द ! मोक्ष होने वाला डूब गया, कि नगरादिक न रहा ? अपितु नगरादिक तो सब कुछ वैसे ही रहा, परन्तु वह ही स्वय डूब गया फिर छठे अध्याय के ९४ पृष्ठ में लिखा है

(३)

नास्तिक —ससार तो स्वप्नवत् झूठा है, परन्तु सोते हुए सत्य, और जागते हुए अ सत्य, परमार्थ में दोनों ही असत्य हैं

जैनी —सोता कौन है ? और जागता कौन है ? और स्वप्न क्या है ? और स्वप्न आता किसको है ?

(नास्तिक चुप हो रहा)

जैनी —स्वप्न भी तो कुछ देखे वा सुने आदिक का ही आता है, और तुम कहते हो, कि जागते असत्य, तो तुम्हारे पांच तत्व भी तो रहते ही होंगे, और तू कहनेवाला

(६)

नास्तिक—१०२ पृष्ठ में हम आधे श्लोक में कोटि ग्रथों का सार कहेंगे क्या 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' बस, ऐसा कहनेवाला जीव ही ब्रह्म है, अपर कोई ब्रह्म नहीं है

जैनी—देखो इन नास्तिकों की व्यामोहता (बेहोशी) पहिले तो कह दिया कि ब्रह्म सत्य है और जगत् केवल मिथ्या है, अर्थात् ब्रह्म के सिवाय जीवादिक कुछ भी नहीं. और फिर कहा कि यों कहने वाला जीव ही ब्रह्म है, और कोई ब्रह्म नहीं है अब देखिये जीव ही को ब्रह्म मान लिया, और ब्रह्म को नास्ति कर दी असल में इन बेचारे नास्तिकों के ज्ञान नेत्र अज्ञानसे मुदे हुए हैं, ता ते इन्हें कुच्छ भी नहीं सूझता.

(७)

नास्तिक—जीव देह के त्याग के अनन्तर पुण्यलोक ब्रह्मपुरी, वा मनुष्य, वा

जैनी—भला. महाआकाश जड़ है वा चेतन है ?

नास्तिक—जड़ है

जैनी—तो फिर महा आकाशवत् मोक्ष क्या हुआ ? यह तो सत्यानाश हुआ ! इस से तो वे मुक्त ही अच्छे थे, जो कभी ब्रह्मपुरी के कभी चक्रवर्त्ति आदिक के सुख तो भोगते मुक्त हो कर तो तुमारे कथन प्रमाण से शुन्य हो गया, क्यों कि तुम मुक्ति को बुझे हुए दीपक की भान्ति मानते हो

(५)

नास्तिक—एक तो शुद्ध ब्रह्म, एक मायोपहित शुद्ध चेतन, जगत् कारण ईश्वर, एक अवद्योपहित जीव, दूसरे अध्याय के १९ वें पृष्ठ में यह सब अनादि हैं; इनको यों नहीं कहा जाता है, कि यह कबसे हैं ?

जैनी—तो फिर तुमारा अद्वैत तो भाग गया ! यह तो तीन हुए

(६)

नास्तिक –१०२ पृष्ठ में हम आधे श्लोक में कोटि ग्रथों का सार कहेंगे क्या 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' बस, ऐसा कहनेवाला जीव ही ब्रह्म है, अपर कोई ब्रह्म नहीं है

जैनी —देखो इन नास्तिकों की व्यामोहता (वेहोशी) पहिले तो कह दिया कि ब्रह्म सत्य है और जगत् केवल मिथ्या है, अर्थात् ब्रह्म के सिवाय जीवादिक कुछ भी नहीं. और फिर कहा कि यों कहने वाला जीव ही ब्रह्म है, और कोई ब्रह्म नहीं है अब देखिये जीव ही को ब्रह्म मान लिया, और ब्रह्म की नास्ति कर दी असल में इन वेचारे नास्तिकों के ज्ञान नेत्र अज्ञानसे मुदे हुए हैं, ता ते इन्हें कुच्छ भी नहीं सूझता

(७)

नास्तिक –जीव देह के त्याग के अनन्तर पुण्यलोक ब्रह्मपुरी, वा मनुष्य, वा

पशु होते है

जैनी —तुम तो पूर्वोक्त एक ब्रह्म के सिवाय दूसरा जीव आदिक कुछ भी नहीं मानते हो, तो क्या ब्रह्म ही जन्म लेता है? और वह आप ही अनेक रूप हो कर पशु, शूकर, कूकर, (सूअर, कुत्ता,) आदिक योनियों में विष्ठा आदिक चरने की सैरें करता है ? बस जी, बस ! नास्तिक जी ! क्या कहना है ? भला यह तो बताओ कि जो घटवत् शरीर जडरूप है वह योनियें भोगता है या उसमें प्रतिबिम्ब रूप ब्रह्म है वह योनियें भोगता है ?

(नास्तिक विचार में पडा)

नास्तिक —अध्याय छठे के १०० वें पृष्ठ में श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री शकराचार्य्य जी महाराज शिवजी का अवतार हस्तामलक आनन्द गिरिसे आदि ले कर बहुत ग्रथों में हमारा मत प्रसिद्ध है

जैनी —ओहो ! वही श्री शंकराचार्य्य

हैं कि जिनको आनन्दगिरि शिष्यने अपनी बनाई हुइ पुस्तक शंकर दिग्विजय के ५८ के प्रकरण में लिखा है, कि मण्डक ब्राह्मण की भार्य्या सरस वाणिसें सवाद में मैथुन रस के अनुभव विषय मे वाल ब्रह्मचारी होने के कारण से हार गये, कि तुम सर्वज्ञ नहीं हुए हो, क्यों कि आनन्दामृत वर्षिणी में भो लिखा है, कि श्री स्वामी शंकराचार्य्यजीने छठे वर्ष की आयु में सन्यास ग्रहण किया था. तो फिर उन्हों ने मरे हुए राजा की देह में प्रवेश कर के राणी से भोग किया, तब सर्वज्ञ हो गये, ता ते फिर सरस वाणि को उसका भेद बता कर विजय को प्राप्त हुए

तर्क —क्या तुम्हारे वेदान्तियों में यही सर्वज्ञता होती है ?

(प्रश्न ९)

जैनी —भला, तुम यह बताओ, कि यदि एक ही आत्मा है तो सोमदत्तका सुख

पशु होते है.

जैनी—तुम तो पूर्वोक्त एक ब्रह्म के सिवाय दूसरा जीव आदिक कुछ नी नहीं मानते हो, तो क्या ब्रह्म ही जन्म लेता है? और वह आप ही अनेक रूप हो कर पशु, शूकर, कूकर, (सूअर, कुत्ता,) आदिक योनियों में विष्ठा आदिक चरने की सैरें करता है? बस जी, बस! नास्तिक जी! क्या कहना है? नला यह तो बताओ कि जो घटवत् शरीर जन्मरूप है वह योनियें नोगता है या उसमें प्रतिबिम्ब रूप ब्रह्म है वह योनियें नोगता है?

(नास्तिक विचार में पडा)

नास्तिक—अध्याय ठठे के १०० के पृष्ठ में श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री शंकराचार्य्य जी महाराज शिवजी का अवतार हस्तामलक आनन्द गिरिसे आदि ले कर बहुत ग्रथो में हमारा मत प्रसिद्ध है

जैनी—ओहो! वही श्री शंकराचार्य्य

जैनी —अच्छा हम से ही पूछे, तो हम ही बता देते है रागद्वेष के प्रयोग से दुःख सुख माना जाता है, परन्तु शरीर और मन यह दोनों ही जड़ हैं जड़ को तो दुःख, सुख का ज्ञान नहीं होता है, दुःख सुख के ज्ञान वाले चेतन (जीव) शरीर में न्यारे२ होते हैं यदि जड़ को ज्ञान होता, तो मुर्दों को भी ज्ञान होता. और यदि सब का आत्मा एक ही होता, अर्थात् सब में एक ही ब्रह्म होता तो एक दूसरे का दुःख सुख दूसरे को अवश्य ही होता

(१०)

नास्तिक —जब यों जाने कि मैं जीव हूं, तब उसको भय होता है, जब यों जाने कि मैं जीव नहीं परमात्मा हूं तब निर्भय हो जाता है

जैनी —इस तुमारे कथन प्रमाण से तो यों हुआ, कि जब तक चोर यों जाने कि मैं चोर हूं, तब तक चोरी का भय है, और जब

देवदत्त क्यों नहीं जानता है ?

नास्तिक—पृष्ठ १०७ वें में अविद्या की उपाधि से जिस शरीर में जिस जगह अभ्यास (खयाल) है, वहा के दुःख आदि, अनुभव हो सकते हैं, और जगह के नहीं यदि दूसरे शरीर में अभ्यास होगा, तो उसका भी दुःख सुख होता है, मित्र और पुत्र के दुःख सुख में दुःखी सुखीवत्

जैनी—वह मन से भले ही सुख दुःख मानें, परन्तु पुत्र के शूख से पिताको शूख नहीं होता है, ताप से ताप नहीं होता

नास्तिक—शरीर पृथक्२ (न्यारे२) जो होते हैं

जैनी—तो फिर मन भी तो न्यारे२ ही होते हैं

नास्तिक—तो देख लो पुत्र के दुःखमें पिताको दुःख होता ही है, तुम ही बताओ, कि कैसे होता है ?

जैनी—अच्छा हम से ही पूछो, तो हम ही बता देते हैं रागद्वेष के प्रयोग से दुःख सुख माना जाता है, परन्तु शरीर और मन यह दोनों ही जड़ हैं जड़ को तो दुःख, सुख का ज्ञान नहीं होता है, दुःख सुख के ज्ञान वाले चेतन (जीव) शरीर में न्यारे२ होते हैं. यदि जड़ को ज्ञान होता, तो मुर्दों को भी ज्ञान होता. और यदि सब का आत्मा एक ही होता, अर्थात् सब में एक ही ब्रह्म होता तो एक दूसरे का दुःख सुख दूसरे को अवश्य ही होता

(१०)

नास्तिक—जब यों जाने कि मै जीव हू, तब उसको भय होता है, जब यों जाने कि मैं जीव नहीं परमात्मा हू तब निर्भय हो जाता है

जैनी—इस तुमारे कथन प्रमाण से तो यों हुआ, कि जब तक चोर यों जाने कि मैं चोर हू, तब तक चोरी का भय है, और जब

देवदत्त क्यों नहीं जानता है ?

नास्तिक—पृष्ठ १०५ वें में अविद्या की उपाधि से जिस शरीर मे जिस जगह अभ्यास (खयाल) है, वहा के दुःख आदि, अनुभव हो सकते हैं, और जगह के नहीं यदि दूसरे शरीर में अभ्यास होगा, तो उसका भी दुःख सुख होता है, मित्र और पुत्र के दुःख सुख में दुःखी सुखीवत्

जैनी—वह मन से भले ही सुख दुःख मानें, परन्तु पुत्र के शूल से पिताको शूल नहीं होता है, ताप से ताप नहीं होता

नास्तिक—शरीर पृथक्२ (न्यारे२) जो होते हैं

जैनी—तो फिर मन भी तो न्यारे२ ही होते हैं

नास्तिक—तो देख लो पुत्र के दुःखमें पिताको दुःख होता ही है, तुम ही बताओ, कि कैसे होता है ?

जैनी —वह नखकी किसने लगाई, और भ्रम में कौन पडा ?

नास्तिक —ब्रह्म ही

जैनी.—ब्रह्म को तो तुम सर्वज्ञ और सर्वव्यापक मानते हो, तो सर्वज्ञ को भ्रम कैसे ? और पडा कहा ?

नास्तिक —जैसे मकरी आप ही जाला पुर के आप ही फन्से

जैनी —वाहवा ! ब्रह्म तो खूब हुआ! जो आप ही तो कूआ खोदे और फिर आख मीच आप ही गिर कर डूब मरे

(१३)

नास्तिक —१२२ पृष्ठ में जैसे स्वप्न के खुलते हुए स्वप्न में जो पदार्थ कल्प रखे थे, सब उसही समय नष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही पीछे विदेह मुक्ति के सब ससार नष्ट हो जाता है कोई ऐसा न विचार करे कि मैं तो मुक्त हो जाऊगा, और मेरे शत्रु मित्रादिक

यों जान ले कि मै तीन लोक का राजा हू फिर खूब ही चोरीया किया करे, कुच्छ नय नहीं. परन्तु नास्तिकजी! वह मन से चाहे राजा हो जावे, परन्तु पकमा तो जावेगा

नास्तिक —यदि जीव और ब्रह्म में हम नेद मानेंगे, तव तो सब में नेद मानना पमेगा.

जैनी —नेद तो है ही, मानना ही क्या पमेगा?

(११)

नास्तिक —१०७ पृष्ठ में यह ससार इन्द्रजाल है?

जैनी—इन्द्रजाल नी तो इन्द्रजालिये का किया ही होता है तो क्या तुम्हारा ब्रह्म इन्द्रजालिया है?

(१२)

नास्तिक —जैसे तोत्ता तलकी पर लटक कर भ्रम में पम जाता है

जैनी —वह नलकी किसने लगाई, और भ्रम में कौन पडा ?

नास्तिक—ब्रह्म ही

जैनी—ब्रह्म को तो तुम सर्वज्ञ और सर्वव्यापक मानते हो, तो सर्वज्ञ को भ्रम कैसे ? और पडा कहा ?

नास्तिक.—जैसे मकडी आप ही जाला पुर के आप ही फन्से

जैनी —वाहवा ! ब्रह्म तो खुब हुआ! जो आप ही तो कुआ खोदे और फिर आख मीच आप ही गिर कर डूब मरे

(१३)

नास्तिक —१२२ पृष्ठ में जैसे स्वप्न के खुलते हुए स्वप्न में जो पदार्थ कल्प रखे थे, सब उसही समय नष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही पीछे विदेह मुक्ति के सब ससार नष्ट हो जाता है कोई ऐसा न विचार करे कि मैं तो मुक्त हो जाऊगा, और मेरे शत्रु मित्रादिक

यों जान ले कि मै तीन लोक का राजा हू फिर खूब ही चोरीया किया करे, कुच्छ जय नहीं परन्तु नास्तिकजी ! वह मन से चाहे राजा हो जावे, परन्तु पकमा तो जावेगा

नास्तिक —यदि जीव और ब्रह्म में हम नेद मानेंगे, तब तो सब में नेद मानता पफेगा.

जैनी —नेद तो है ही, मानना ही क्या पफेगा ?

(११)

नास्तिक —१०७ पृष्ठ में यह ससार इन्द्रजाल है ?

जैनी —इन्द्रजाल जी तो इन्द्रजालिये का किया ही होता है तो क्या तुम्हारा ब्रह्म इन्द्रजालिया है ?

(१२)

नास्तिक —जैसे तोत्ता तलकी पर लटक कर भ्रम में पफ जाता है

जैनी:—वह नखकी किसने लगाई, और भ्रम में कौन पडा ?

नास्तिक—ब्रह्म ही

जैनी:—ब्रह्म को तो तुम सर्वज्ञ और सर्वव्यापक मानते हो, तो सर्वज्ञ को भ्रम कैसे ? और पडा कहा ?

नास्तिक—जैसे मकरी आप ही जाला पुर के आप ही फन्से

जैनी—वाहवा ! ब्रह्म तो खूब हुआ! जो आप ही तो कूआ खोदे और फिर आख मीच आप ही गिर कर डूब मरे

(१३)

नास्तिक—१२२ पृष्ठ में जैसे स्वप्न के खुलते हुए स्वप्न में जो पदार्थ कल्प रखे थे, सब उसही समय नष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही पीछे विदेह मुक्ति के सब ससार नष्ट हो जाता है कोई ऐसा न विचार करे कि में तो मुक्त हो जाऊंगा, और मेरे स्नत्रु मित्रादिक

यों जान ले कि मैं तीन लोक का राजा हू फिर खूब ही चोरीया किया करे, कुच्छ नय नहीं. परन्तु नास्तिकजी ! वह मन से चाहे राजा हो जावे, परन्तु पकमा तो जावेगा

नास्तिक —यदि जीव और ब्रह्म में हम नेद मानेंगे, तब तो सब में नेद मानता पमेगा

जैनी —नेद तो है ही, मानना ही क्या पमेगा ?

(११)

नास्तिक —१०७ पृष्ठ में यह ससार इन्द्रजाल है ?

जैनी—इन्द्रजाल नी तो इन्द्रजालिये का किया ही होता है तो क्या तुम्हारा ब्रह्म इन्द्रजालिया है ?

(१२)

नास्तिक —जैसे तोता तलकी पर लटक कर भ्रम में पम जाता है

था तो न हो, परन्तु मित्रका नाश तो नहीं हुआ, और जो सोने का थाल अनहुआ देखा था, सो उसके न था, तो जगत् में तो है? अन हुआ कैसे हुआ? यह तो मन की चाल और के और भरोसे में विचल जाती है, जैसे कोई पुरुष अपने साईस को कह रहा था कि तुम घोड़ा कस कर लाओ, हम ग्रामान्तर को जावेंगे, इतने में एक कुम्हार गधे ले कर आ गया तो वह शाहूकार कहता है कि तू इन गधों को परे कर, उधर साईस को देख कर कहता है कि अरे तूं गधे को कस लाया, भला कहीं गधा भी कसवा कर मगवाया जाता है? परन्तु सकल्प की चाल और के भरोसे और जगह लग जाती है, यथा कोई पुरुष नौकर को दाम दे कर कहने लगा कि बाजार में से मगज और सेमियें यह२ ले आओ. इतने में उस की लड़की आ कर कहने लगी, कि लालाजी! देखो भाईने मेरी

और जगत् वना रहेगा, और इनके पीछे के लिये यत्न करना मूर्खता है

जैनी —देखो इन वेदान्त मतवाले नास्तिकों की बुद्धि कैसे मिथ्यारूप भ्रम चक्र में पड़ रही है ? जैसा, किसी पुरुष को स्वप्न हुआ कि मेरा मित्र मेरे घर आया है, और मैंने उसे सुवर्ण के थाल में बूरा चावल जिमाये हैं, फिर उसकी नींद खुल गई, तो कहो नास्तिकजी ! क्या उसके घर का और मित्रादिक का नाश हो गया ?

नास्तिक —नहीं

जैनी —तो तुम्हारा पूर्वोक्त लिखा मिथ्या रहा, जो तुमने लिखा है कि स्वप्न के अनन्तर स्वप्नवाले पदार्थ नाश हो जावेंगे

नास्तिक—उस समय तो वहा मित्र नहीं रहा, और जो उसने सुवर्ण का थाल अनहुआ स्वप्न में देखा था वह भी न रहा

जैनी—अरे मूर्ख ! मित्र उस वक्त नहीं

था तो न हो, परन्तु मित्रका नाश तो नहीं हुआ, और जो सोने का थाल अनहुआ देखा था, सो उसके न था, तो जगत् में तो है? अन हुआ कैसे हुआ? यह तो मन की चाल और के और जरोसे में विचल जाती है, जैसे कोई पुरुष अपने साईस को कह रहा था कि तुम घोड़ा कस कर लाओ, हम ग्रामान्तर को जावेंगे, इतने में एक कुम्हार गधे ले कर आ गया तो वह शाहूकार कहता है कि तूं इन गधों को परे कर, उधर साईस को देख कर कहता है कि अरे तू गधे को कस लाया, जला कहीं गधा जी कसवा कर मगवाया जाता है? परन्तु संकल्प की चाल और के जरोसे और जगह लग जाती है, यथा कोई पुरुष नौकर को दाम दे कर कहने लगा कि बाजार में से मगज और सेमियें यह२ ले आओ. इतने में उस की लड़की आ कर कहने लगी, कि लालाजी! देखो जाईने मेरी

गोद में पुरीषोत्सर्ग कर दिया है, मेरे कपरे विष्ठा मे जर गये, उधरसे नौकर पूछ रहा है, कि अजी क्या २ लाऊं, तो वह कहने लगा कि विष्ठा लाओ! ऐसे ही प्राय स्वप्न में मन के संकल्प जी हुआ करते हैं.

नास्तिक —तो यह बताओ, कि स्वप्न कैसे आता है ? और कुछ का कुछ क्यों दीखने लग जाता है ?

जैनीः—तुम स्वप्न स्वप्न यों ही पुकारते हो, तुम्हें स्वप्न की तो खबर ही नहीं है. हे जाई! स्वप्न कोई ब्रह्मा तो नहीं दिखाता है, और न कोई स्वप्न में नई सृष्टि ही बस जाती है और नाही कोई तुम्हारा ब्रह्म अर्थात् जीव, देह से निकल कर कहीं जाग जाता है स्वप्न तो इन्द्रियों के सो जाने और मन के जागने से आता है और कुछ का कुछ तो पूर्वोक्त मन के खयाल विचल जाने से दीखता है

जैनी—और तुमने यह जो ऊपर लिखा है, कि विदेह मुक्ति अर्थात् जो वेदान्ती ब्रह्मज्ञानी मुक्त हो जाता है, (मर जाता है) तब सब ससार का नाश हो जाता है, सो हम तुमको यों पूछते हैं, कि जो वेदान्ती ब्रह्मज्ञानी मर जाता है, उसका नाश हो ज़ाता है, वा उसके मरते ही सब वेदान्तियों की मुक्ति हो जाती है,अथवा सर्व ससार का प्रलय हो जाता है, अर्थात् मुक्ति (मर जाना) क्यों कि तुम तीसरे अध्याय ६० वें पृष्ठ में लिख आये हो कि, जो अपने आपको ब्रह्म मानता है वह चाहे रो पीट कर मरे, चाहे चम्मार के घर मरे, उसकी अवश्य ही मुक्ति हो जाती है, तो तुम्हारे कथनानुसार उसकी मुक्ति होते ही सब ससारका नाश हो जायगा, इसमें हमें एक तो खुशी हासिल हुई कि वेदान्ती तो बड़े२ साधनों से परम हस बन२ कर मुक्त होंगे, और

उनके मरते ही सब अज्ञानी और पापीयों की स्वयं ही मुक्ति अर्थात् नाश हो जायगा. और तुम्हारे कथनानुसार ऐसे भी सिद्ध होता है, कि जब वेदान्ती उत्पन्न होता है तब ससार वस जाता है, और वेदान्ती जब मर जाता है तब ससार का नाश हो जाता है परन्तु यह सन्देह ही रहा कि वेदान्ती का पिता, वेदान्ती से पहिले कैसे हुआ? और वेदान्ती की मुक्ति अर्थात् मरणे के अनन्तर वेदान्ती के पुत्र, कन्या कैसे रह जाते हैं? ना तो हम लोग आस्तिक आखों वालों को यों ही मानना पडेगा, कि वेदान्ती को न कभी मोक्ष प्राप्ति हुई और नाही होगी, क्यों कि सब ससार पहिले भी था, और अब भी है, और वेदान्ती के मरण के अनन्तर भी रहेगा

(१५)

नास्तिक —भला, जैनीजी! तुमही बताओ, कि जीव चेतन है वा जड़?

जैनी—चेतन

नास्तिक—यदि जीव चेतन है तो जीव को परलोक का ज्ञान अर्थात् स्मरण क्यों नहीं होता ?

जैनी—जीव को परलोक का ज्ञान अर्थात् स्मृति के न होने से क्या जीव की चेतनता की और परलोक की नास्ति हो जायगी ?

नास्तिक—और क्या ?

जैनी—किस कारण से ?

नास्तिक—किस कारण से क्या ? यदि जीव चेतन अर्थात् ज्ञानवान् होता, और परलोक से आता जाता, तो परलोक का स्मरण (याद) क्यों कर न होता ?

जैनी—अरे भोले ! तुझे गर्भवास की अवस्था स्मरण नहीं है, तो क्या तुम गर्भ मे उत्पन्न नहीं हुए हो ? वा, तुम चेतन नहीं

हो? जरू हो? (२) तुम्हें माता के दुग्ध का स्वाद याद नहीं है तो क्या माता का दूध पी कर नहीं पले हो? (३) यथा, किसी पुरुष ने विद्या पढी, फिर दो—चार वा ७ महीने तक बीमार रहा उसे पिछला पढा हुआ स्मरण न रहा, तो क्या उसने पढा न था? (४) अथवा, किसी पुरुषने कैद में कठिन वेदना भोगी, फिर वह कैद से छूट कर घर के सुखों में मग्न हो कर कैद के कष्ट भूल गया, तो क्या उसने कैद नहीं भोगी? (५) अथवा, स्त्री प्रसववेदना से दुःखित होती है, फिर कालान्तर में शृङ्गार भूषण हास्य विलास आदि भोगों में मग्न हो कर प्रसूत की अवस्था भूल गई, तो क्या उसको प्रसूत की पीड़ा नहीं हुई? किंवा यह पूर्वोक्त जरू हो जाते हैं? अपितु नहीं, तो ऐसे ही जीव चेतन के परलोक याद ना रहने से परलोक की नास्ति नहीं हो सकती

हो ? जरूर हो ? (२) तुम्हें माता के दुग्ध का स्वाद याद नहीं है तो क्या माता का दूध पी कर नहीं पले हो? (३) यथा, किसी पुरुष ने विद्या पढी, फिर दो—चार वा ७ महीने तक बीमार रहा उसे पिछला पढा हुआ स्मरण न रहा, तो क्या उसने पढा न था ? (४) अथवा, किसी पुरुषने कैद में कठिन वेदना भोगी, फिर वह कैद से छूट कर घर के सुखों में मग्न हो कर कैद के कष्ट भूल गया, तो क्या उसने कैद नहीं भोगी ? (५) अथवा, स्त्री प्रसववेदना से दु खित होती है, फिर कालान्तर में शृङ्गार भूषण हास्य विलास आदि भोगों में मग्न हो कर प्रसूत की अवस्था भूल गई, तो क्या उसको प्रसूत की पीड़ा नहीं हुई? किंवा यह पूर्वोक्त जरूर हो जाते हैं? अपितु नहीं, तो ऐसे ही जीव चेतन के परलोक याद ना रहने से परलोक की नास्ति नहीं हो सकती

(१६)

नास्तिक —यह तो आपने सत्य कहा, परन्तु यह बता दीजिये कि ना याद रहने का कारण क्या है ?

जैनी —अरे भाई ! यह जीव चेतन कर्मों से पूर्वोक्त समवाय सम्बन्ध है, ता ते इन जीवों की चेतनता, अर्थात् ज्ञान शक्तियें सूक्ष्म रूप ज्ञान, आवरण आदि कर्मानुबन्ध हो रही हैं, वृक्ष के बीज की न्याईं जैसे वृक्ष के बीज में वृक्ष वाली सर्व शक्तियें सूक्ष्म हो कर रही हुई हैं, और निमित्तों के मिलने से उसी बीजमें से किसी काल में अङ्कुर फूट कर शाखी, पत्ते आदी होते हुए संपूर्ण वृक्ष प्रकट हो जाता है, ऐसे ही इन जीवों को इन्द्रिय और मन आदि प्राणों के निमित्तों से मति, सुरत, आदि ज्ञान प्रगट होते हैं जब तक यह जीव कर्मों के बंधन सहित है, तब तक विना इन्द्रिय आदिक औजारों के कोई ज्ञान

हो ? जरू हो ? (२) तुम्हें माता के दुग्ध का स्वाद याद नहीं है तो क्या माता का दूध पी कर नहीं पले हो? (३) यथा, किसी पुरुष ने विद्या पढी, फिर दो–चार वा ६ महीने तक बीमार रहा उसे पिछला पढा हुआ स्मरण न रहा, तो क्या उसने पढा न था ? (४) अथवा, किसी पुरुषने कैद में कठिन वेदना भोगी, फिर वह कैद से छूट कर घर के सुखों में मग्न हो कर कैद के कष्ट भूल गया, तो क्या उसने कैद नहीं भोगी ? (५) अथवा, स्त्री प्रसववेदना से दु खित होती है, फिर कालान्तर में शृङ्गार भूषण हास्य विलास आदि भोगों में मग्न हो कर प्रसूत की अवस्था भूल गई, तो क्या उसको प्रसूत की पीडा नहीं हुई? किंवा यह पूर्वोक्त जरू हो जाते हैं? अपितु नहीं, तो ऐसे ही जीव चेतन के परलोक याद ना रहने से परलोक की नास्ति नहीं हो सकती.

अज्ञान लोग तीसरा हरा रंग कहते हैं परन्तु बुध्दिमान् पुरुष जानते हैं कि तीसरा नहीं, दो ही हैं हल्दी का पीलापन, और नील का नीला पन,यह दोनों ही रङ्ग मिले हुए हैं-हरेमे तीसरा रङ्ग, इनसे पृथक् लाली तो नहीं आ गई, अर्थात् गुल अनारी तो नहीं हो गया ऐसे ही जड़ में जड़ गुण, तो नाति२ के हो जाते हैं, परन्तु जड़ में जड़ से अलग चेतन गुण नहीं हो सकता

(१८)

नास्तिक —(१) शोरा, (२) गंधक, (३) कोयला मिलाने से बारूद हो जाती है, जिस में पहाड़ों के उड़ाने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है.

जैनी —बारूद में उड़ाने की शक्ति होती तो, कोठे में पड़ीर ही उड़ा देती, उड़ाना तो बारूद से अलग अग्नि से होता है

छपकर्म आदि क्रिया नहीं कर सकता है जैसे मनुष्य को सीवना तो आता है परन्तु सूई बिन नहीं सी सकता, इत्यादि और भी बहुतसे दृष्टान्त हैं

(१७)

नास्तिक—यह इन्द्रिय शरीर पाच तत्व से होते हैं—(१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु, (५) आकाश इन तत्वों ही के मिलने से ज्ञान हो जाता है वा और कोई जीव होता है ?

जैनी—देखो, इस अधमति नास्तिकों के आगे सत्य उपदेश करना कुक्कुड़ कूवत् है. अरे भाई! यह पूर्वोक्त पाच तत्व तो जड हैं. इन जड़ों के मिलाप से जड़ गुण तो उत्पन्न हो जाता है परन्तु जड़ों में चेतन गुण अन हुआ कहासे आवे ? जैसे हल्दी और नील के मिलाप से हरा रंग हो जाता है, जिस को

के अनन्तर अर्थात् मुर्दा भी देख सकता क्यों कि मुर्दे की भी तो अल्पकाल तक वैसी ही आखे बनी रहती है बस वही ठीक है जो हम ऊपर लिख चुके हैं, कि कर्म अनुबन्ध जीव इन्द्रियों के निमित्त से अर्थात् जीव इन्द्रिय इन दोनों के मिलाप से देखने आदि की क्रिया सिद्ध होती है

(२०)

नास्तिक —अजी! मैं आपसे फिर पूछता हू कि कर्मानुबन्ध जीव परलोक आदि पूर्व कृत कैसे भूल जाता है? कोई दृष्टान्त देकर सविस्तर समझा दीजिये

जैनी —दृष्टान्त तो हम पहिले ही पाच लिख आये हैं लो अब और भी विस्तार पूर्वक सुनो यथा, राजग्रह नगर में किसी एक धनी पुरुष शिवदत्त के पुत्र देवदत्त को कुसङ्ग के प्रयोगसे मद्यपान करने का व्यसन पड़

नास्तिकः—खैर, अग्नि से ही सही परन्तु जैनी जी! अग्नि भी तो जड़ है

जैनी—अग्नि जड़ ही सही, परन्तु नास्तिक जी! मिलाने वाले चलाने वाला तो चेतन ही है ताते जड़ से न्यारा चेतन कोई और ही है

(१९)

नास्तिक—भला! शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, ग्रहण करने की शक्ति इन्द्रियों में है वा जीव में, अर्थात् देखने का गुण आंखों में है वा जीव में?

जैनी—जब तक जीव अज्ञान कर्म के अनुबंध है, तब तक तो न अकेला जीव देख सकता है और नाही आंख देख सकती है, क्यों कि यदि जीव देख सकता, तो अन्ध पुरुष भी चक्षु से विना ही देख सकता, और जो आंखें देख सकती तो जीव निकल जाने

ये हैं? फिर आगे उस एक शत्रू मिला, उसने उसके खूब जूते लगाये, वह मारसे दुखित हुआ, और चिल्लाने लगा, और बडी लज्जा-को प्राप्त हुआ. फिर थोडी देर के बाद आगे चल कर किसी पुरुष ने कहा कि तेरे शत्रुने तुझे बहुत जूते लगाये तो वह पूर्वोक्त कारण से अपने बीते दुख को भूल ही रहा था, ता तेयों बोला, कि मेरे जूते लाने वाला कौन जन्मा है? अब देखो, वह मद्यपायी पुरुष वर्त्तमान काल में तो सुख को सुख जानता था और दुख को दुख, परन्तु मदिरा के जोहर मगज पर लगने से अतीत, अनागत के सुख दुख को याद नहीं रख सका ऐसे ही पुरुष वत् तो यह जीव, और मदिरावत् मोह कर्म के परमाणु, सो इस मोह कर्म के प्रयोग से यह जीव भी जब वर्त्तमान काल जिस यो-नि में होता है तब वहा के सुख दुख को जानता हैं और जब इस देह को छोड कर दू-

गयाथा, एक समय मद्यपान कर बाजार में से जा रहा था, तो उसके मित्र ने उसे अपनी दुकान पर बैठा लिया, और मोदक वा पेड़े आदिक खिलाये उसने आदरका और मिठाई आदि खानेका अपने मन में अति सुख माना. फिर आगे गया तो उसे किसी एक पुरुष ने पूछा कि आज तो तुम्हें मित्र ने खूब लडू खिलाये, तो उस मद्यपने जब वर्त्तमान समय लड्डू आदिक खाये थे तब उसकी, चेतनता- अर्थात् बुद्धि जिस धातु (मगज) से काम ले रही थी अर्थात् मित्र के सत्कार को अनुभव कर रही थी, सो उस धातु (मगज) के माद्दे पर उस मदिरा के पुद्गल (जोहर) मेदकी गर्मी से उड कर मगज की धातु को रोकते थे, ता ते वह अपने अतीत काल की व्यतीत बात को स्मरण नहीं रख सकता था, ताते वह पूर्वोक्त सुखों को भूला हुआ यों बोला, कि मुझे किस ऐसे तैसे ने लड्डू खिला-

ये हैं? फिर आगे उस एक शत्रू मिला, उसने उसके खूब जूते लगाये, वह मारसे दु.खित हुआ, और चिल्लाने लगा, और बमी लज्जा-को प्राप्त हुआ फिर थोमी देर के बाद आगे चल कर किसी पुरुष ने कहा कि तेरे शत्रुने तुझे बहुत जूते लगाये तो वह पूर्वोक्त कारण से अपने वीते दु ख को भूल ही रहा था, ता तेयों बोला, कि मेरे जूते लाने वाला कौन जन्मा है? अब देखो, वह मद्यपायी पुरुष वर्त्तमान काल में तो सुख को सुख जानता था और दु ख को दु ख, परन्तु मदिरा के जोहर -मगज पर लगने से अतीत, अनागत के सुख दु ख को याद नहीं रख सका ऐसे ही पुरुष वत् तो यह जीव, और मदिरावत् मोह कर्म के परमाणु, सो इस मोह कर्म के प्रयोग से यह जीव भी जब वर्त्तमान काल जिस यो-नि में होता है तब वहा के सुख दु ख को जानता है और जब इस देह को छोम कर दू-

सरी योनि में कर्मानुसार उत्पन्न होता है तब पूर्वोक्त कारण से परलोक को भूल जाता है और जियादह शरीर और जीव के न्याराश होने में ज्ञात होने की आवश्यकता हो तो सूत्र श्री रायप्रसैनी जी के दूसरे अधिकार में परदेशी राजा नास्तिक के ग्यारह प्रश्न और श्री जैनाचार्य्य केशी कुमारजी आस्तिक की ओरसे उत्तरों में से प्राप्ति कर लेना, इस जगह पुस्तक बड़ा होने के कारण से विशेष कर नहीं लिखा गया

और हमारी तर्फ से यह शिक्षा भी स्मरण रखने के योग्य है कि यदि तुमारी बुद्धि में परलोक नहीं भी आवे तो भी परलोक अवश्यही मानो, क्यों कि जो परमेश्वर और परलोक को नहीं समझेगा अर्थात् नहीं मानेगा, तो वह पापों से अर्थात् वाखघात आदि अगम्य गमनादि कुकर्मों से कभी नहीं बच

सकेगा, यथा किसी कवी ने कैसा ही सुन्दर दोहा कहा है.—

परमेश्वर परलोक को जय कहीं जिस चित्त,
गुह्य देशमें पाप सों कबहूं नवचसी मित्त १

ता ते परमेश्वर और परलोक पर निश्चय करके हिंसा, मिथ्या, काम क्रोधादि पूर्वोक्त दुष्ट कर्मों का अवश्य ही त्याग, करना चाहिये, और दया, सत्य, परोपकार आदि सत्य धर्म का अवश्य ही अनुष्ठान करना चाहिये; क्यों कि यदि परलोक होगा तो शुभ के प्रभाव से इस लोक में तो यश होगा और विविध प्रकार के रोग और कलंक और राज दण्डादिकों से बचा रहेगा, और परलोक में शुभ गति हो कर अत्यन्त सुखी होगा, यदि परलोक तेरी बुद्धि के अनुसार नहीं भी होगा तो भी धर्म के प्रयोग से इस जगह तो यश आदिक पूर्वोक्त सुख होगा

यदि ज्ञाता जनों की सम्मति से विरुद्ध कुछ न्यूनाधिक लिखा गया होवे तो 'मिच्छामि दुक्कडम्'

॥ शुभ भूयात् ॥

नोटः—इस ग्रंथ में जो मत मतान्तरोंके पुस्तकों के प्रमाण दिये गये हैं, यदि उनका अर्थ इस ग्रंथ मे कहीं लिखे के अनुसार न हो तो वह अपना अर्थ प्रकट करे ठीक किया जायगा

ॐ श्री वीतरागाय नमः॥

॥ जैन धर्मके नियम ॥

१—परमेश्वर के विषय में।

१ परमेश्वर को अनादि मानते हैं अर्थात् सिद्धस्वरूप, सत्चिदानंद, अज, अमर, निराकार, निष्कलङ्क, निष्प्रयोजन, परमपवित्र सर्वज्ञ, अनन्त शक्तिमान् सदासर्वानन्दरूप परमात्मा को अनादि मानते हैं॥

२—जीवों के विषय में।

२-जीवोंको अनादि मानते हैं अर्थात् पुण्य पाप रूप कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता संसारी अनन्त जीवोंको जिनका चेतना लक्षण है अनादि मानते हैं॥

३—जगत के विषय में।

३-जड़ परमाणुओं के समूह रूप लोक (जगत्) को अनादि मानते हैं अर्थात् पृथिवी, पानी, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्यादि पुद्गलों के स्वभावसे

समूह रूप जगत् १ काल (समय) २ स्वभाव (जड़ में जड़ता, चेतनमें चैतन्यता) ३ आकाश (सर्व पदार्थों का मकान) ४ इन को प्रवाह रूप अकृत्रिम (विना किसी के बनाये) अनादि मानते हैं ॥

४—अवतार ।

४—धर्मावतार ऋषीश्वर वीतराग जिन देव को जैन धर्म का बताने वाला मानते हैं अर्थात् जि, धातु, जय, अर्थ में है जिसको नक प्रत्यय होने से जिन, शब्द सिद्ध होता है अर्थात् राग द्वेष काम क्रोधादि शत्रुयों को जीन के जिन देव कहाये, जिनस्याय, जैन, अर्थात् जिनेश्वर देव का कहा हुआ यह धर्म उसे जैन धर्म कहते हैं ॥

५—जैनी ।

५—जैनी मुक्ति के साधनों में यत्न करने वालो को मानते हैं अर्थात् उक्त जिनेश्वर देव के कहे हुये जैन धर्म में रहे हुये अर्थात् जैन धर्म के अनुयाईयों को जैनी कहते हैं ॥

६—मुक्ति का स्वरुप ।

६-मुक्ति, कर्म बध से अबन्ध हो जाने अर्थात् जन्म मरण से रहित हो परमात्म पदको प्राप्त

कर सर्वज्ञता, सदैव सर्वानन्द में रमन रहने को मानते हैं अर्थात् मुक्ति के साधन धन और कामनी के त्यागी सच्च गुरुयोंकी सङ्गत करके शास्त्र द्वारा जर्ड चेतन का स्वरुप सुनकर ससारिक पदार्थों को अनित्य [झूठे] जान कर उदासीन होकर सत्य सतोष दया दानादि सुमार्ग में इच्छा रहित चल कर काम क्रोधादि पर गुन के अभाव होने पर आत्म ज्ञान में लीन होकर सर्वारम्भ परित्यागी अर्थात् हिंसा मिथ्या दि के त्याग के प्रयोग से नये कर्म पैदा न करे और पुर कृत [पहिले किये हुये कर्मो का पूर्वोक्त जप तप ब्रह्मचर्यादि के प्रयोग से नाश कर के कर्मों से अलग होजाना अर्थात् जन्म भरण से रहित होकर परमपवित्र सच्चिदानन्द रूप परमपदको प्राप्त हे ज्ञान स्वरूप सदैव परमानन्द में रमन रहने को मोक्ष मानते हैं

७—साधुयों के चिन्ह और धर्म ।

७-पञ्चयम (पाचमहाव्रत के) पालने वालों को साधु कहते हैं

अर्थात् श्वेत वस्त्र, मुख वस्त्रिका मुखपर बांधना, एक ऊन आदिक का गुच्छा (रजोहरण) जीव

रक्षा के लिये हाथ में रखना काष्ठ पात्र में आर्य गृहस्थियों के द्वार से निर्दोष भिक्षा ला के आहार करना

पूर्वक ५ पञ्चाश्रव हिंसा १ मिथ्या २ चोरी ३ मैथुन ४ ममत्व ५ इनका त्यागन

और अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्याऽ परिग्रह यमा इन उक्त (पञ्च महाव्रतों के) धारण करना अर्थात् दया १ सत्य २ दत्त ३ ब्रह्मचर्य ४ निर्ममत्व ५ दया, (जीवरक्षा अर्थात् स्थावरादि कीटी से कुञ्जर पर्य्यंत सर्व जीवों की रक्षा रूप धर्म में यत्न का करना १ सत्य (सच्च बोलना) २ दत्त (गृहस्थियों का दिया हुआ अन्न पानी वस्त्रादि) निर्दोष पदार्थ का लेना ३ ब्रह्मचर्य [हमेशा यती रहना] अपितु स्त्री को हाथ तक भी न लगाना जिस मकान में स्त्री रहती हो उस मकान में भीन रहना ऐसे ही साध्वी को पुरुष के पक्ष में समझ लेना ४ निर्ममत्व [कौडी पैसा आदिक धन, धातु का किंचित् भी न रखना ५ रात्रि भोजन का त्याग अर्थात् रात्रि में न खाना न पीना रात्रिके समय में अन्न पानी आदिक खान पान के पदार्थ का सञ्चय भी न करना

[न रखना] और नक्षेपाव चूमि शय्या, तथा काष्ठ शय्या का करना फलफूल आदिक और सासारिक विषय व्यवहारों से अलग रहना, पञ्च परमेष्ठी का ज़ाप करना धर्म शास्त्रों के अनुसार पूर्वोक्त सत्य सार धर्म रीति को ढुरूकर परोपकार के लिये सत्योपदेश यथा बुद्धि करते हुए देशांतरो में विचरते रहना एक जगह फेरावना के मुकाम का न करना ऐसी वृत्ति वालों को साधु मानते हैं ॥

८—श्रावक (शास्त्र सुनने वाले) गृहस्थियों का धर्म ।

८—श्रावक पूर्वोक्त सर्वज्ञ भाषित सूत्रानुसार सम्यग् दृष्ट में दृढ हो कर धर्म मर्यादा में चलने वालों को मानते हैं अर्थात् प्रात काल में परमेश्वर का जाप रूप पाठ करना अभयदान, सुपात्रदान का देना सायकालादि में सामायक का करना फूठका न बोलना, कम न तोलना फूठी गवाही का न देना चोरी का न करना, परस्त्री का गमन न करना स्त्रीयोंने परपुरुष को गमन न करना अर्थात् अपने पतिके परन्त सब पुरुषों को पिता बधु के समतुल्य समझना जूए का न खेलना, मांस का न खाना,

शराब का न पीना, शिकार (जीव घात) का न करना इतना ही एही बल्कि मास खाने, शराब पीने वाले शिकार (जीव घात) करने वाले को जाति में भी न रखना अर्थात् उस्के सगाई (कन्यादान) नही करना उसके साथ खानपानादि व्यवहार नहीं करना खोटा वाणिज्य न करना अर्थात् दारू, घास, जहर, शस्त्र आदिक का न वेचना और कसाई आदिक हिंसकों को व्याज पै दाम तक का भी न देना क्यू कि उनकी दुष्ट कमाई का धन लेना अधर्म हैं॥

ए—परोपकार ।

ए—परोपकार सत्य विद्या (शास्त्रविद्या) सीखने सिखाने पूर्वोक्त जिनेन्द्र देव भाषित सत्य शास्त्रोक्त जरु चेतन के विचार से बुद्धिको निर्मल करने में जीव रक्षा सत्य भाषणादि धर्म में उद्यम करने को कहते हैं अर्थात् यथा

दोहा—गुणवंतोकी वंदना, अवगुण देख मध्यस्थ।
तुखी देख करुणा करे मैत्रीभाव समस्त ॥१॥

अर्थ-पूर्वोक्त गुणोंवाले साधु वा श्रावकों को नमस्कार करे और गुण रहित से मध्यस्थ भाव रहे अर्थात् उसपर राग द्वेष न करे २ दुखियों को देख

के करुणा (दया) करे अर्थात् अपना कल्प धर्म रख
के यथा शक्ति उनका दुःख निवारण करे ३ मैत्री
भाव सबसें रक्खे अर्थात् सब जीवों से प्रियाचरण
करे किसी का बुरा चिंते नहीं ॥ ४ ॥

१०—यात्रा धर्म ॥

१०—यात्रा चतुर्विध सघ तीर्थ अर्थात् (चार
तीर्थों) का मिल के धर्म विचार का करना उसे यात्रा
मानते हैं अर्थात् पूर्वोक्त साधु गुणों का धारक पुरुष
साधु १ तैसे ही पूर्वोक्त साधु गुणोंकी धारका स्त्री
साध्वी २ पूर्वोक्त श्रावक गुणोंका धारक पुरुष श्रावक
पूर्वोक्त श्रावक गुणों की धारका स्त्री श्राविका ४
नका चतुर्विध सघ तीर्थ कहते हैं इनका परस्पर
में प्रीति से मिल कर धर्म का निश्चय करना उसे
ात्रा कहते हैं और धर्म के निश्चय करने के लिये
श्नोत्तर कर के धर्म रूपी लाभ उठाने वाले (सत्य
न्तोष हासिल करने वालों) को यात्री कहते हैं
र्थात् जिस देश काल में जिस पुरुष को सत्त स-
तादि करके आत्मज्ञान का लाभ हो वह तीर्थ ।
था चाणक्य नीति दर्पण अध्याय १२ श्लोक ८ में:—

साधूनां दर्शन पुण्य, तीर्थ भूताहि साधव ।
कालेन फलते तीर्थं, सद्य साधु समागम ॥

अर्थ—साधु का दर्शन ही सुकृत है साधु ही तीर्थ रूप हैं तीर्थ तो कभी फल देगा साधुओं का सग शीघ्र ही फलदायक हैं १ और जो धर्म सभा में धर्म सुनने को अधिकारी आवे वह यात्री २ और जो धर्म प्रीति और धर्म का वधाना अर्थात् आश्रव का सम्वर का वधाना (विषयानन्द को घटाना आत्मानन्द को वधाना) वह यात्रा ३ इन पूर्वोक्त सर्व का सिद्धान्त (सार) मुक्ति है अर्थात् सर्व प्रकार शरीरी मानसी दुःख से छूटकर सदैव सर्वज्ञता आत्मानन्द में रमता रहे ॥

॥ इति दशनियम ॥ शुभम् ॥